1. ओ३म प्रति॑ष्ठ॥ यजुर्वेद २.१३ (ओ३म् की महती, महिमा, फलश्रुति)

पदार्थः हे (ओ३म्) ओंकार के अर्थ जगदीश्वर! आप (बृहस्पतिः) प्रकृत्यादि के पालन करने हारे (इह) इस संसार वा विद्वानों के हृदय में (प्रतिष्ठ) कृपा करके इस यज्ञ वा वेदविद्यादि को स्थापन कीजिये॥

ओ३म् क्रतो॑ स्मर। क्लि॒बे स्म॑र। कृ॒त स्म॑र॥ **यजुर्वेद ४०.१५**

पदार्थः इसका भाष्य करते हुए महर्षि दयानन्द लिखते हैं "हे (क्रतो) कर्म करने वाले जीव! तू शरीर छूटते समय (ओ३म्) इस नाम वाच्य ईश्वर को (स्मर) स्मरण कर, (क्लिबे) अपने सामर्थ्य के लिए परमात्मा और अपने स्वरूप का (स्मर) स्मरण कर, (कृतम्) अपने किये का (स्मर) स्मरण कर।

2. ओं खम्ब्रह्म॥ यजुर्वेद ४०.१७

पदार्थः अर्थात् जिसका नाम ओ३म् है वह आकाशवत् महान् सर्वव्यापक है। ओ३म् का मुख्य अर्थ अवतीत्योम् से यह लिया जाता है कि ईश्वर रक्षा करनेवाला है। ईश्वर का रक्षा करने के गुण का प्रकाश ओम् नाम से होता है। ईश्वर सर्वरक्षक है इस सत्य को ओ३म् नाम प्रकट करता है।

3. ओ३म् ऋ॒चो अ॒क्षरे॑ पर॒मे व्यो॑मन्यस्मि॒न्देवा अधि॒ विश्वे॑ निषे॒दुः। यस्तन्न वेद॒ किमृ॒चा क॑रिष्यति॒ य इत्तद्वि॒दुस्त॑ अमी स॒मास॑ते ॥ अथर्ववेद ०९.०१०.१८

पदार्थः (यस्मिन्) जिस (अक्षरे) व्यापक [वा अविनाशी] (परमे) सर्वोत्तम (व्योमन्) विविध रक्षक [वा आकाशवत् व्यापक] ब्रह्म में (ऋचः) वेद विद्याएँ और (विश्वे) सब (देवाः) दिव्य पदार्थ [पृथिवी सूर्य आदि लोक] (अधि) ठीक ठीक (निषेदुः) ठहरे थे। (यः) जो [मनुष्य] (तत्) उस [ब्रह्म] को (न वेद) नहीं जानता, वह (ऋचा) वेदविद्या से (किम्) क्या [लाभ] (करिष्यति) करेगा, (ये) जो [पुरुष] (इत्) ही (तत्) उस [ब्रह्म] को (विदुः) जानते हैं (ते अमी) वे यही [पुरुष] (सम्) शोभा के साथ (आसते) रहते हैं॥

4. ओ३म् ऋ॒चः। अ॒क्षरे॑। प॒र॒मे। विऽओ॑मन्। यस्मि॑न्। दे॒वाः। अधि॑। विश्वे॑। नि॒ऽसे॒दुः॥ ऋग्वेद १.१६४.३९

पदार्थः (यस्मिन्) जिस (ऋचः) ऋग्वेदादि वेदमात्र से प्रतिपादित (अक्षरे) नाशरहित (परमे) उत्तम (व्योमन्) आकाश के बीच व्यापक परमेश्वर में (विश्वे) समस्त (देवाः) पृथिवी सूर्य लोकादि देव (अधि, निषेदुः) आधेयरूप से स्थित होते हैं।

5. ओ३म् ओमा॑सश्चर्षणीधृतो॒ विश्वे॑ देवास॒ आ ग॑त। दा॒श्वांसो॑ दा॒शुषः॑ सु॒तम् ॥ ऋग्वेद १.३.७

पदार्थः (ओमासः) जो अपने गुणों से संसार के जीवों की रक्षा करने, ज्ञान से परिपूर्ण, विद्या और उपदेश में प्रीति रखने, विज्ञान से तृप्त, यथार्थ निश्चययुक्त, शुभगुणों को देने और सब विद्याओं को सुनाने, परमेश्वर के जानने के लिये पुरुषार्थी, श्रेष्ठ विद्या के गुणों की इच्छा से दुष्ट गुणों के नाश करने, अत्यन्त ज्ञानवान् (चर्षणीधृतः) सत्य उपदेश से मनुष्यों के सुख के धारण करने और कराने (दाश्वांसः) अपने शुभ गुणों से सबको निर्भय करनेहारे (विश्वे देवासः) सब विद्वान् लोग हैं, वे (दाशुषः) सज्जन मनुष्यों के सामने (सुतम्) सोम आदि पदार्थ और विज्ञान का प्रकाश (आ गत) नित्य करते रहें॥

6. ओ३म् । वर्मीवधृष्णवारुज ॥ सामवेद ५८५॥

पदार्थः हे घर्षणशील ओ३म् प्रभु! आप कवच की भांति बन कर विपरीत वृत्तियों में हमारी रक्षा करें।

7. एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम्। एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥ कठोपनिषद १.२.१७

पदार्थः ब्रह्मप्राप्ति तथा ब्रह्मज्ञान के समस्त साधनों में (एतत्) इस ब्रह्म के मुख्य नाम 'ओम्' का (आलम्बनम्) उपासना में जप रूप में आश्रय करना (श्रेष्ठम्) अत्यन्त प्रशस्त और (एतत्) यही (आलम्बनम्) साधन (परम्) सर्वोपरि है। (एतत्) इस (आलम्बनम्) 'ओम्' के जप तथा तदर्थभावना रूप साधन को (ज्ञात्वा) जानकर (ब्रह्मलोके) ब्रह्म के सान्निध्य से होने वाले मोक्ष सुख में (महीयते) सब दुःखों से छूटकर शान्ति रूप सुख से पूजित=सत्कृत होता है अर्थात् 'ओम्' के जप से ही मोक्ष को प्राप्त कर लेता है ।

8. ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव। यच्चान्यत्त्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव ॥ माण्डुक्योपनिषद १.१

पदार्थः (ओम्) परमात्मा (इति) जो (एतद्) यह (अक्षरम्) नाश रहित है (इदं) यह (सर्वं) सब (तस्य) इसका (उपव्यायानं) प्रकाशित करने वाली (भूतं) भूत (भवत्) जो वर्तमान है (भविष्यत्) जो आने वाला है (इति) जो (सर्वम्) सब है (ओङ्कार एव) ओंकार ही है (यत्) जो (च) और (अन्यत्) दूसरे (त्रिकालातीतं) तीनों कालों से पृथक् सर्वव्यापक है (तत्) वह (अपि) भी (ओङ्कार एव) ओंकार ही है।

व्याख्याः शृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

ओ३म् रूपी धागे में हम उस ब्रह्म को धारण करते रहें। क्योंकि परमात्मा का जो सूत्र है, वह इस प्रकृति के सृष्टि चक्र को चला रहा है। स्वतः गति आ रही है। क्योंकि प्रत्येक मनका प्रत्येक परमाणु, ओ३म् रूपी धागे से पिरोया हुआ है। कोई भी वैज्ञानिक ऐसा नहीं है जो ओ३म् रूपी सूत्र को पृथक कर सके। ओ३म् रूपी धागे से, एक एक कण कण पिरोया हुआ है। एक एक परमाणु पिरोया हुआ है, वह स्थूल बन करके स्वतः गति आ रही है। कहीं सूक्ष्म बन करके स्थूल को गति दे रहा है।

9. सोऽयमात्माध्यक्षरमोङ्कारोऽधिमात्रं पादा मात्रा मात्राश्च पादा अकार उकारो मकार इति॥ माण्डुक्योपनिषद १.८

पदार्थः (सः) इसलिये (अयमात्मा) यह जीव के भीतर वास करने वाला आत्मा (अक्षरम्) नाश रहित (ओंकार) ओ३म् है (अधिमात्रं) मात्रा इनसे बताया गया (पादाः) अर्थात् भागों से विभाजित करके (मात्रा) मात्रा से विभाग करके (मात्राश्च) मात्रा में (पादाः) पाद है (अकारः) अकार (उकारः) उकार (मकारः) मकार।

10. जागरितस्थानो वैश्वानरोऽकारः प्रथमा मात्राप्तेरादिमत्त्वाद्वाप्नोति ह वै सर्वान्कामानादिश्च भवति य एवं वेद॥ माण्डुक्योपनिषद १.९

पदार्थः (जागरितस्थानः) जाग्रत दशा का अभिमानी जीव में व्यापक (वैश्वानरः) वैश्वानर नाम वाला (अकारः) अकार (प्रथमा) प्रथम (मात्रा) सर्व अक्षरों में व्यापक (आप्तेः) पाना (आदिमत्त्वात्) सब अक्षरों में पहला होने से (आप्नोति) प्राप्त होता है (ह वै) निश्चय करके (सर्वान् कामान्) सपूर्ण इच्छाओं का (च) भी (भवति) होता है (यः) जो (एवं) इस प्रकार (वेद) जानता है।

11. प्राणो ब्रह्म कं ब्रह्म खं ब्रह्मेति स होवाच विजानाम्यहं यत्प्राणो ब्रह्म कं च तु खं च न विजानामीति ते होचुर्यद्वाव कं तदेव खं यदेव खं तदेव कमिति प्राणं च हास्मै तदाकाशं चोचुः॥ छान्दोग्यपनिषद ४.१०.५

पदार्थः प्राण ब्रह्म है, (सुख) ब्रह्म है, आकाश ब्रह्म है। (उपकोसल ने, अग्नियों से कहा) मैं जानता हूं कि प्राण ब्रह्म है परन्तु कं और खं (भी ब्रह्म हैं यह) नहीं जानता हूं। वे (अग्नियां) बोलीं जो ही कं है वहीं खं (और) जो ही खं है वही कं है। कहा जाता है कि उस (उपकोसल के लिए वे अग्नियां) प्राण और उस आकाश के लिए बोलीं।

12. ओमिति ब्रह्म। ओमितीदं सर्वम्। ओमित्येतदनुकृतिर्ह स्म वा अप्यो श्रावयेत्याश्रावयन्ति। ओमिति सामानि गायन्ति। ॐ शोमिति शस्त्राणि शंसन्ति। ओमित्यध्वर्युः प्रतिगरं प्रतिगृणाति। ओमिति ब्रह्मा प्रसौति। ओमित्यग्निहोत्रमनुजानाति। ओमिति ब्राह्मणः प्रवक्ष्यन्नाह ब्रह्मोपाप्नवानीति। ब्रह्मैवोपाप्नोति॥ तैतरीयोपनिषद ८.१

पदार्थः (ओ३म्, इति, ब्रह्म) ओ३म् यह ब्रह्म महान् है। ओम, इति इदम्, सर्वम् ओम् यह सब कुछ है। ओम इति, एतद् अनुकृति ओम् यह अनुकरण करना अथवा आज्ञानुवर्ती होना है। ह, स्म, वै प्रसिद्ध है कि ओम् सम्बोधन वाचक है विद्यार्थी, अपि कुछ श्रावय, इति सुनाओ ? ऐसा कहने पर, ओम् स्वीकार वाचक होने से ओम् कहकर वे आश्रावयन्ति सुनाते हैं। ओम्, इति सामानि, गायन्ति ओम् कहकर ही साम गान करते हैं। ओम्, शोम्, इति ओं शम् शम्+ ओम् शमोम्+ शोम् ऐसा उच्चारण करके (शस्त्राणि) ऋग्वेद के मन्त्रों को जो गायन नहीं किये जाते , (शंसन्ति) उच्चारण करते हैं। (ओम्+इति) ओम् कहकर अध्वर्युः यजुर्वेदी ऋत्विग् प्रतिगरम् यजुर्वेद के प्रोत्साहक मन्त्रों को गृणाति पढ़ता है। ओम्, इति ओम् कहकर ही ब्रह्मा, प्रस्तौति ब्रह्मा ईश्वर स्तुति करता है। ओम्, इति ओम् कहकर ही अग्निहोत्रम् हवन करना अनुजानाति स्वीकार करता है, अथवा हवन करने की अनुज्ञा देता है। ओम्, इति ओम् कहकर ही विद्वान् वेद का प्रवचन करने की इच्छा करता है जिससे ब्रह्म, उपाप्नुतानि, इति ब्रह्म को प्राप्त होऊं और वह ब्रह्म, एव, उपाप्नोति ब्रह्म को अवश्य प्राप्त कर लेता है। ('ओम्, दश' अर्थात् इस अनुवाक में १० वाक्य हैं)।

व्याख्या मनुष्य जब इससे पूर्व अनुवाक में कहे अनुसार अपनी आत्मा और मन आदि को बलवान् बना लेता है तब उसमें उच्च कोटि की आस्तिक बुद्धि पैदा होती है और उसका प्रत्येक कार्य उसी बुद्धि से प्रभावित हुआ करता है। वह ईश्वर को महान् समझने लगता है और उसके प्रेम में इतना मग्न हो जाता है कि सब में और सब कुछ उसे ओम् (ईश्वर) ही दिखलाई देने लगता है। जिस प्रकार एक लोहे के गोले को जब खूब तपा लेते हैं और वह लाल अंगारे के सदृश हो जाता है तब उस गोले को लोहो कहें तब भी ठीक है और यदि अग्नि कहें तब भी ठीक है क्यों कि जो वस्तु भी उसके सम्पर्क में आती है उसे वह जला दिया करता है। इसी प्रकार जगत् तो लोहे के गोले के सदृश है ब्रह्माग्नि अपने सर्वव्यापकत्व से उसमें अग्निवत् व्यापक है इस दिशा में यदि जगत् को प्रकृति कहें तो भी ठीक है यदि ब्रह्म कहें तब भी ठीक है परन्तु जिस प्रकार लोहा और अग्नि उस गोले में पृथक् पृथक् जाने और माने जाते हैं इसी प्रकार जगत् में भी प्रकृति और (ओम् ईश्वर) पृथक् पृथक् जाने और माने जाया करते हैं। न प्रकृति ईश्वर हो जाती है , न ईश्वर प्रकृति। प्रेमी चूँकि ईश्वर के प्रेम में मग्न है और उसी में लवलीन हो रहा है इसलिए उसे प्रकृति नहीं अपितु ईश्वर ही ईश्वर सब जगह दिखाई देने लगता है। इसीलिए यहाँ कहा गया है कि ''यह सब कुछ ओम् ही है ।'' (२) ओम् स्वीकार के अर्थ में भी प्राचीन काल में प्रयुक्त हुआ करता था इसलिए जब किसी से कहा जाता था कि मन्त्र पाठ करो तो वह 'ओम्' कहकर अर्थात् स्वीकार करके मन्त्र पाठ करने लगता था। (३) प्रत्येक लोक और परलोक सम्बन्धी कार्य का प्रारम्भ आस्तिकता के प्रभाव से ओम् कहकर ही किया जाया करता था, यदि कोई सामगान करता था तो ओ३म् कहकर ही गाना शुरू करता था। ऋग्वेद और यजुर्वेद का मन्त्रोच्चारण भी ओ३म् कहकर ही किया जाता था। ब्रह्मा यज्ञ में अपना कार्य भी ओ३म् ही से प्रारम्भ करता था ओ३म् कहकर ही यज्ञ और प्रवचन किये जाते थे और ये सब ईश्वर प्राप्ति ही के लिए किये जाते थे और ऐसा करने वाले ईश्वर की प्राप्ति भी कर लिया करते थे॥

13. तस्य वाचकः प्रणवः॥ योग दर्शन १.२७

पदार्थः तस्य उस (ईश्वर का) वाचक वाचक (नाम) प्रणवः प्रणव अर्थात् ॐ कार है।

14. तज्जपस्तदर्थभावनम्॥ योग दर्शन १.२८

पदार्थः तत् उस (ॐ कार का), जपः जप और तत् उस (ईश्वर के), अर्थ अर्थस्वरूप (का), भावनम् ध्यान करना अर्थात् पुनः पुन: चिन्तन करना चाहिए।
उस ॐ कार का जप और उस ईश्वर के अर्थस्वरूप का ध्यान करना अर्थात् पुनः पुनः चिन्तन करना चाहिए।

15. तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः॥ योग दर्शन १.३२

पदार्थः तत् उन (विक्षेपों को) प्रतिषेधार्थम् दूर करने के लिए एकतत्त्व एक तत्त्व का अभ्यास: अभ्यास (करना चाहिए)।

16. यः पुनरेतं त्रिमात्रेणोमित्येतेनैवाक्षरेण परं पुरुषमभिध्यायीत स तेजसि सूर्ये सम्पन्नः। यथा पादोदरस्त्वचा विनिर्मुच्यत एवं ह वै स पाप्मना विनिर्मुक्तः स सामभिरुन्नीयते ब्रह्मलोकं स एतस्माज्जीवनात्परात्परं पुरिशयं पुरुषमीक्षते। तदेतौ श्लोकौ भवतः ॥ प्रश्नोपनिषद २.४१

पदार्थः परमात्मा के सर्वोत्तम नाम को पूर्ण ध्यान से जपता है। (एतेन) इसके द्वारा। (एव) ही। (अक्षरेण) अक्षर अर्थात् नाशरहित। (परम्) महान्, अति सूक्ष्म (पुरुषम्) सारे जगत् में व्यापक परमात्मा को। (अभिध्यातीत) योग द्वारा प्रत्यक्ष करके ध्यान करता है। (स) वह उपासना करने वाला। (तेजसि) ज्ञान के बढ़ाने वाले। (सूर्य) वेद में। (सपन्नः) प्राप्त होकर। (यथा) जैसे। (पादोदरः) सांप जिसके पेट में ही पांव होते हैं। (त्वया) कैंचुली को। (विनिर्मुच्यते) नितान्त त्याग कर देता है। (हवै) इसी प्रकार उपासना करने वाला। (सः) वह। (पाप्मना) मन के भीतर जो मल, विक्षेप और आवरण दोष से। (विनिर्मुक्तः) छूटकर (सः) वह। (सामभिः) सामवेद से बताई हुई उपासना से। (उन्नीयते) बड़ाई को प्राप्त करता है। (ब्रह्म लोके) परमात्मा के दर्शन को प्राप्त करता है। (सः) वह। (एतस्मात्) इस प्रत्यक्ष जगत् से। (जीवधनात्) जीवात्मा देने वाले शरीर से। (परात्) जो कारण रूपी सूक्ष्म प्रकृति है इससे भी। (परम्) सूक्ष्म जो परमात्मा है, जो एक एक परमाणु के भीतर भी विद्यमान है। (पुरिशयम्) जो जगत् रूप मकान में रहता है अर्थात् जगत् में सर्वत्र व्यापक है। (पुरुषम्) इस कारण से जिसका नाम पुरुष है। (ईक्षते) उसके दर्शन करता हैं। (तद्) उसके विषयों में। (एतौ) ये दो। (श्लोको) श्लोक (भवतः) प्रमाण हैं।

17. यः पुनरेतं त्रिमात्रेणोमित्येतेनैवाक्षरेण परं पुरुषमभिध्यायीत स तेजसि सूर्ये सम्पन्नः। यथा पादोदरस्त्वचा विनिर्मुच्यत एवं ह वै स पाप्मना विनिर्मुक्तः स सामभिरुन्नीयते ब्रह्मलोकं स एतस्माज्जीवनात्परात्परं पुरिशयं पुरुषमीक्षते। तदेतौ श्लोकौ भवतः ॥ प्रश्नोपनिषद ५.५

पदार्थः परमात्मा के सर्वोत्तम नाम को पूर्ण ध्यान से जपता है। (एतेन) इसके द्वारा। (एव) ही। (अक्षरेण) अक्षर अर्थात् नाशरहित। (परम्) महान्, अति सूक्ष्म (पुरुषम्) सारे जगत् में व्यापक परमात्मा को। (अभिध्यातीत) योग द्वारा प्रत्यक्ष करके ध्यान करता है। (स) वह उपासना करने वाला। (तेजसि) ज्ञान के बढ़ाने वाले। (सूर्य) वेद में। (सपन्नः) प्राप्त होकर। (यथा) जैसे। (पादोदरः) सांप जिसके पेट में ही पांव होते हैं। (त्वया) कैंबुली को। (विनिर्मुच्यते) नितान्त त्याग कर देता है। (हवै) इसी प्रकार उपासना करने वाला। (सः) वह। (पाप्मना) मन के भीतर जो मल, विक्षेप और आवरण दोष से। (विनिर्मुक्तः) छूटकर (सः) वह। (सामभिः) सामवेद से बताई हुई उपासना से। (उन्नीयते) बड़ाई को प्राप्त करता है। (ब्रह्मलोके) परमात्मा के दर्शन को प्राप्त करता है। (सः) वह। (एतस्मात्) इस प्रत्यक्ष जगत् से। (जीवधनात्) जीवात्मा देने वाले शरीर से। (परात्) जो कारण रूपी सूक्ष्म प्रकृति है इससे भी। (परम्) सूक्ष्म जो परमात्मा है, जो एक एक परमाणु के भीतर भी विद्यमान है। (पुरिशयम्) जो जगत् रूप मकान में रहता है अर्थात् जगत् में सर्वत्र व्यापक है। (पुरुषम्) इस कारण से जिसका नाम पुरुष है। (ईक्षते) उसके दर्शन करता हैं। (तद्) उसके विषयों में। (एतौ) ये दो। (श्लोको) श्लोक (भवतः) प्रमाण हैं।

18. ऋग्भिरेतं यजुर्भिरन्तरिक्षं सामभिर्यत्तत्कवयो वेदयन्ते। तमोङ्कारेणैवायतनेनान्वेति विद्वान्यत्तच्छान्तमजरममृतमभयं परं चेति ॥ प्रश्नोपनिषद ५.७

पदार्थः (ऋग्भिः) ऋग्वेद ज्ञानकांड और जाग्रत अवस्था से। (एतम्) इस लोक को। (यजुर्भिः) यजुर्वेद, कर्मकांड और स्वप्न अवस्था से। (अन्तरिक्षम्) चन्द्रादिलोको को (सामभिः) सामवेदी उपासना काण्ड और सुषुप्ति अवस्था से। (यत्) जो मिलता है उसको। (कवयः) ज्ञानी विद्वान्। (वेदयन्ते) जानते हैं। (तम्) उस। (ओंकारेण) परमात्मा के सर्वोत्तम नाम से। (एव) ही। (आयतनेन) आश्रम से। (अन्वेति) प्राप्त करता है। (विद्वान्) विद्वान्। (यत्) जो। (तत्) वह। (शांतम्) इच्छा तथा क्लेश रहित। (अजरम्) अजर। (अमृतं) अमर। (अभयम्) सर्वत्र सदा निर्भय हो। (परम्) अति सूक्ष्म और महान्। (च) और। (इति) यह परिणाम है।

19. सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति। यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं सङ्ग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्॥ कठोपनिषद १.२.१५

पदार्थः (यत्) जिस (पदम्) प्रापणीय ब्रह्म का (सर्वे वेदाः) ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद, ये सभी चारों वेद (आमनन्ति) बार बार प्रतिपादन करते हैं (च) और (सर्वाणि, तपांसि) सब सत्यभाषणादि धर्मानुष्ठानरूप तप (यद्) जिसको (वदन्ति) कहते हैं अर्थात् जिसकी प्राप्ति के लिए ही सब तप किए जाते हैं (यम्) जिसकी (इच्छन्तः) प्राप्ति की इच्छा करते हुए (ब्रह्मचर्यम्) ब्रह्मचर्यादि आश्रमों के नियमों १. पदम्=पदनीयं सर्वोत्तमोपायैर्मनुष्यैः प्रापणीयं मोक्षाख्यमस्ति तत्।। (ऋ० भू० महर्षि दयानन्द) २. "म्ना अभ्यासे" (भ्वा०) धातो रूपमेतत्। "पाघ्रा०" इत्यादिना मनादेशः। ३. "ऋतं तपः सत्यं तपः श्रुतं तपः शान्तं तपो दमस्तपः शमस्तपो दानं तपो यज्ञस्तपो भूर्भुवः सुवर्ब्रह्मैतद् उपास्व, एतत् तपः।" (तैत्ति० आरण्य० प्रपा० १०। अनु० ८) का (चरन्ति) अनुष्ठान करते हैं (तत्, पदम्) उस=पूर्वोक्त गुणविशिष्ट प्रापणीय ब्रह्म को (ते) तेरे लिए (संग्रहेण) संक्षेप से ब्रवीमि मैं यमाचार्य कहता हूं (एतत्) यह (ओम्, इति) 'ओम्' उसका मुख्य नाम है, इस प्रकार सब को जानना चाहिए।

20. एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम्। एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् ॥ कठोपनिषद १.२.१६

पदार्थः (एतत्) यह 'ओम्' (हि, एव) ही (अक्षरम् १. अवधारणवाचकपदद्वयेनान्यस्य सर्वथा प्रतिषेधः कथ्यते। अर्थात् यहां 'हि, एव' ये दोनों पद निश्चयार्थ के बोधक हैं। जिससे स्पष्ट है कि ब्रह्म का 'ओम्' ही मुख्यनाम है। २. 'अक्षरम्' पद के दो अर्थ हैं—(१) विनाश रहित (२) व्यापक। इसमें निम्नलिखित प्रमाण हैं—"अक्षरं नक्षरं विद्याद् अश्नोतेर्वा सरोऽक्षरम्।" नाश रहित शाश्वत (ब्रह्म) ब्रह्म है। (एतत्, एव) यह 'ओम्' ही (हि) निश्चय से (परम्) सर्वाधिक सूक्ष्म होने से (अक्षरम्) अक्षर=व्यापक है, इससे सूक्ष्म कोई नहीं है। (एतत्) इस अविनाशी ब्रह्म को (हि, एव) ही निश्चय से (ज्ञात्वा) जान कर (यः) जो पुरुष (यत्) जो, सांसारिक या पारलौकिक सुख (इच्छति) चाहता है, (तत्) वह सुख (तस्य) उसको अवश्य प्राप्त हो जाता है।

21. एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम्। एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥ कठोपनिषद १.२.१७

पदार्थः ब्रह्मप्राप्ति तथा ब्रह्मज्ञान के समस्त साधनों में (एतत्) इस ब्रह्म के मुख्य नाम 'ओम्' का (आलम्बनम्) उपासना में जप रूप में आश्रय करना (श्रेष्ठम्) अत्यन्त प्रशस्त और (एतत्) यही (आलम्बनम्) साधन (परम्) सर्वोपरि है। (एतत्) इस (आलम्बनम्) 'ओम्' के जप तथा तदर्थभावना रूप साधन को (ज्ञात्वा) जानकर (ब्रह्मलोके) ब्रह्म के सान्निध्य से होने वाले मोक्ष सुख में (महीयते) सब दुःखों से छूटकर शान्ति रूप सुख से पूजित=सत्कृत होता है अर्थात् 'ओम्' के जप से ही मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

22. प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते। अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ॥ मुण्डकोपनिषद २.२.४

पदार्थः (प्रणवः) ओंकार यह एक (धनुः) धनु है (शरः) शर (आत्मा) आत्मा है (वेद्धव्यं) इस बाण को निशाने पर लगाना चाहिये (शरवत्) तीर की भांति (तन्मयः) अपने विचार को बनाकर (भवेद्) हो जावे।

23. ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव। यच्चान्यत्त्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव॥ माण्डुक्योपनिषद १.१

पदार्थः (ओम्) परमात्मा (इति) जो (एतद्) यह (अक्षरम्) नाश रहित है (इदं) यह (सर्वं) सब (तस्य) इसका (उपव्यायानं) प्रकाशित करने वाली (भूतं) भूत (भवत्) जो वर्तमान है (भविष्यत्) जो आने वाला है (इति) जो (सर्वम्) सब है (ओङ्कार एव) ओंकार ही है (यत्) जो (च) और (अन्यत्) दूसरे (त्रिकालातीतं) तीनों कालों से पृथक् सर्वव्यापक है (तत्) वह (अपि) भी (ओङ्कार एव) ओंकार ही है।

24. सोऽयमात्माध्यक्षरमोङ्कारोऽधिमात्रं पादा मात्रा मात्राश्च पादा अकार उकारो मकार इति॥ माण्डुक्योपनिषद १.८

पदार्थः (सः) इसलिये (अयमात्मा) यह जीव के भीतर वास करने वाला आत्मा (अक्षरम्) नाश रहित (ओंकार) ओ३म् है (अधिमात्रं) मात्रा इनसे बताया गया (पादाः) अर्थात् भागों से विभाजित करके (मात्रा) मात्रा से विभाग करके (मात्राश्च) मात्रा में (पादाः) पाद है (अकारः) अकार (उकारः) उकार (मकारः) मकार।

25. जागरितस्थानो वैश्वानरोऽकारः प्रथमा मात्राप्तेरादिमत्त्वाद्वाप्नोति ह वै सर्वान्कामानादिश्च भवति य एवं वेद ॥ माण्डुक्योपनिषद १.९

पदार्थः (जागरितस्थानः) जाग्रत दशा का अभिमानी जीव में व्यापक (वैश्वानरः) वैश्वानर नाम वाला (अकारः) अकार (प्रथमा) प्रथम (मात्रा) सर्व अक्षरों में व्यापक (आप्तेः) पाना (आदिमत्त्वात्) सब अक्षरों में पहला होने से (आप्नोति) प्राप्त होता है (ह वै) निश्चय करके (सर्वान् कामान्) सम्पूर्ण इच्छाओं का (च) भी (भवति) होता है (यः) जो (एवं) इस प्रकार (वेद) जानता है।

26. ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत। ओमिति ह्युद्गायति तस्योपव्याख्यानम्॥ छान्दयोग्पनिषद १.१.१

पदार्थः एतद् इस अक्षरम् अविनाशी उद्गीथम् उच्च स्वर से गाये जाने वाले ओम् + इति ओंकार की उपासीत उपासना करें। हि क्यों कि ओम् + इति ओंकार ही उद्गायति उच्च स्वर से गाया जाता है। तस्य, उप व्याख्यानम् उस ओम् का आगे व्याख्यान किया जायेगा। **व्याख्या ओम् की महिमा वेद और शास्त्रों में गायन की गई है। उपनिषदों में उनका विस्तृत व्याख्यान है। उसके अर्थ भी अनेक हैं, परन्तु जप और उपासना के प्रकरण में, उसे अव रक्षणे धातु से बना हुआ समझ कर उसके अर्थ प्रायः रक्षक किये जाते हैं। भाव यह है कि वह ईश्वर (ओ३म्) मनुष्यों के हृदय में है और उनकी रक्षा का साधन बना रहता है। ओम् उद्गीथनाम से उद्गाता द्वारा सोम यज्ञ में उच्च स्वर से गायन किया जाता है।** सोम यज्ञ सात प्रकार के होते हैं (१) अग्निष्टोम, (२) अत्यग्निष्टोम, (३) उक्थ, (४) षोडशी, (५) वाजपेय, (६) अतिरात्र और (७) अप्तोर्याम। इन यज्ञों में प्रायः १६ ऋत्विज होते हैं जिनमें चार सामवेदी अवश्य होते हैं। उन सामवेदियों में मुख्य उद्गाता होता है। व्रती उद्गाता, सामवेद के भाग उद्गीथ को, ओम् से आरम्भ करके गाता है। ओ३म् को प्रणव कहा जाता है। प्र उपसर्ग पूर्वक ङ्ग णु स्तुतौ इस धातु से प्रणव शब्द निष्पन्न होता है। इस ओ३म् पद के द्वारा ईश्वर की प्रकृष्ट रूप से स्तुति की जाती है, करनी चाहिए इसीलिए इसे प्रणव कहते हैं। ईश्वर के केवल एक ही नाम ओ३म् को प्रणव कहा जाता है। उसके किसी भी अन्य नाम को प्रणव नहीं कहा जाता है। ओ३म् को उद्गीथ भी कहा जाता है। ओ३म् के माध्यम से ईश्वर का उत्तम रूप से गान स्तुति ध्यान किया जाता है, इसलिए उसे उद्गीथ कहा जाता है। छान्दोग्य उपनिषद् आदि में उद्गीथ उपासना का वर्णन पाया जाता है।

27. स य एतदेवं विद्वानक्षरं प्रणौत्येतदेवाक्षरं स्वरममृतमभयं प्रविशति तत्प्रविश्य यदमृता देवास्तदमृतो भवति ॥ छान्दयोग्पनिषद् १.४.५

पदार्थः यः जो एतत् इस अक्षरम् अविनाशी ओम् को एवम् इस प्रकार विद्वान् जानता हुआ प्रणौति स्तुति करता है सः वह एतत् इस एव ही अक्षरम् अविनश्वर अमृतम् अमर अभयम् अभय स्वरम् ओंकार में प्रविशति प्रविष्ट होता है। यत् जैसे देवाः देवगण अमृताः अमर हुए तत् वैसे ही तत्, प्रविश्य उसमें प्रविष्ट होकर अमृतः भवति अमर होता है।

28. तान्यभ्यतपत्तेभ्योऽभितप्तेभ्य ओङ्कारः सम्प्रास्रवत्तद्यथा शङ्कुना सर्वाणि पर्णानि सन्तृण्णान्येवमोङ्कारेण सर्वा वाक्सन्तृण्णोङ्कार एवेदं सर्वमोङ्कार एवेदं सर्वम्॥ छान्दग्योपनिषद २.२३.३

पदार्थः तानि, अभ्यतपत् उन तीन अक्षरों को प्रजापति ने तपाया तेभ्यः, अभितप्तेभ्यः, ओंकारः, सम्प्रास्त्रवत् उनके तपने से ओंकार प्रकाशित हुआ तत्, यथा, शङ्कुना, सर्वाणि पर्णानि, सन्तृण्णानि सो जैसे पत्तों की नाल से समस्त पत्ते व्याप्त हैं। एवम्, ओंकारेण, सर्वा, वाग्, सन्तृण्णा इसी प्रकार ओंकार से सब वेद वाणी व्याप्त है। ओंकार, एव, इदं, सर्वम्, ओंकार, एव, इदं, सर्वम् यह सब कुछ ओंकार ही है।

29. अथ यत्रैतदस्माच्छरीरादुत्क्रामत्यथैतैरेव रश्मिभिरूर्ध्वमाक्रमते स ओमिति वा होद्वा मीयते स यावत्क्षिप्येन्मनस्तावदादित्यं गच्छत्येतद्वै खलु लोकद्वारं विदुषां प्रपदनं निरोधोऽविदुषाम्॥ छान्दग्योपनिषद ८.६.५

पदार्थः अथ, यत्र, एतत्, अस्मात्, शरीरात्, उत्क्रामति और जब यह जीवात्मा इस शरीर से निकलता है अथ, एतैः, एव, रश्मिभि, ऊध्वः, आक्रयते तब इन्हीं रश्मियों के द्वारा जो सूर्य से लेकर शरीर की नाड़ियों तक फैली हुई हैं ऊपर चढ़ता है। सः ओम्, इति, वा, उत्, वा, मीयते वह ओम् ही का उच्चारण करता हुआ ऊपर ही को जाता है। सः, यावत्, मनः, क्षिप्येत्, तावत्, आदित्यं, गच्छति वह जब तक इधर मन क्षीण होता है तब तक अर्थात् उतने ही काल में आदित्य में पहुंच जाता अर्थात् सौरी दशा को प्राप्त हो जाता है। एतत्, वै, खलु, लोकद्वारम् निश्चय यही ब्रह्मलोक का द्वार है विदुषां, प्रपदनं, अविदुषां, निरोधः ज्ञानियों के लिए खुला और अज्ञानियों के लिए बन्द है।

30. प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते। अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्॥ मुण्डकोपनिषद २.२.४

पदार्थः (प्रणवः) ओंकार यह एक (धनुः) धनु है (शरः) शर (आत्मा) आत्मा है (वेद्धव्यं) इस बाण को निशाने पर लगाना चाहिये (शरवत्) तीर की भांति (तन्मयः) अपने विचार को बनाकर (भवेद्) हो जावे।

31. स्वदेहमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम्। ध्याननिर्मथनाभ्यासादेवं पश्यन्निगूढवत्॥ श्वेताश्वेतरोपनिषद १.१४

पदार्थः स्वदेहम् अपने शरीर को अरणिम् नीचे की अरणि विशेष ईन्धन कृत्वा के समान करके च और प्रणवम् ओ३म् परमात्मा के सर्वोत्कृष्ट नाम को उत्तरारणिम् ऊपर की अरणि के समान करके ध्याननिर्मथनाभ्यासात् ध्यानरूपी रगड़ के निरन्तर अभ्यास से निगूढवत् आत्मा के भीतर में स्थित देवम् परमात्मदेव को पश्येत् ध्यान दृष्टि से देखे।

32. प्रणवेनैव साम्नो रूपमुपगच्छत्यो३म्। ओ३मित्येतेनो हास्यैष सर्व एव ससामा यज्ञो भवति॥ ओ३म् शतपथ ब्राह्मण १.४.१.१

पदार्थः शतपथ ब्राह्मण के अनुसार ओ३म् वस्तुत: प्रणव का सामवेदीय रूप है। अत: कह सकते हैं कि ओ३म् के द्वारा संपूर्ण यज्ञ सामयुक्त हो जाता है।

33. क्षरन्ति सर्वा वैदिक्यो जुहोति यजतिक्रियाः। अक्षरं दुष्करं ज्ञेयं ब्रह्म चैव प्रजापतिः॥ मनु स्मृति २.८४

पदार्थः (वैदिक्यः सर्वाः जुजोतियजतिक्रियाः) वेदोक्त सब हवन, याग आदि क्रियायें (क्षरन्ति) विनष्ट हो जाती हैं (अक्षरं च प्रजापतिः ब्रह्म एव) ओम् यह अक्षर और प्रजापति परमात्मा को ही (दुष्करं ज्ञेयम्) अविनाशी जानना चाहिए॥

34. आद्यं यत्व्यक्षरं ब्रह्म त्रयी यस्मिन्प्रतिष्ठिता। स गुह्योऽव्यस्त्रिवृद्वेदो यस्तं वेद स वेदवित्॥ मनु स्मृति ११.२६५

पदार्थः (यत् त्रि+अक्षरम् आद्यं ब्रह्म) जो तीन अक्षरों वाले प्रमुख नाम ओम् से उच्चरित होने वाला सबका आदि मूल परमेश्वर है, (यस्मिन् त्रयी प्रतिष्ठिता) जिसमें तीनों वेद विद्याएं प्रतिष्ठित है, (सः अन्यः गुह्यः त्रिवृतवेदः) वह भी एक गुप्त अर्थात् अदृश्य सूक्ष्म त्रिवृत्वेद है। (यः तं वेद स वेदवित्) जो उसको जानता है, वह वेदवेत्ता कहलाता है।

35. ब्रह्म ह वै ब्रह्माणं पुष्करे...। गो पथ ब्राह्मण १.१६ ओंकार की महिमा (पण्डित क्षेमकरणदास त्रिवेदी, सम्पादिकेः डाक्टर आचार्य प्रज्ञा देवी, व्याकरणाचार्य मेधा देवी)

पदार्थः (ब्रह्म ह वै) ब्रह्म ने निश्चय करके (ब्रह्माणम्) ब्रह्मा {अपने सामर्थ्य विशेष} को (पुष्करे) आकाश में (ससृजे) उत्पन्न किया। (स खलु ब्रह्मा सृष्ट) वह भी ब्रह्मा उत्पन्न होकर (चिन्ताम् आपेवे) चिन्ता को प्राप्त हुआ। (अहम्) मैं (केन एकेन अक्षरेण) कौन से एक अक्षर {अविनशी ब्रह्म} से {सर्वान् च कामान्} सब ही कामनाओं, (सर्वान् च लोकान्) और सब लोकों, (सर्वान् च देवान्) और सब दिव्य पदार्थों, (सर्वान् च वेदान्) और सब वेदों, (सर्वान् च यज्ञान्) और सब यज्ञों {देवपूजा संगतिकरण और दान} (सर्वान् च शब्दान्) और सब शब्दों (सर्वा च व्युष्टी) और सब विविध वसतियों, (सर्वाणि च स्थावरजङ्गमानि भूतानि) सब स्थावर और जङ्गम सत्ताओं को बनाऊं। (स ब्रह्मचर्य्यम् अचरत्) उसने ब्रह्मचर्य {इन्द्रियों को वश में रखना और वेदों को पढना आदि} किया। (स) उसने (ओम् इति एतत् अक्षरम्) ओम् इस अक्षर {कण्डिका ५} (द्विवर्णम्) दो वण वाले, (चतुर्मात्रम्) चार मात्रा वाले, (सर्वव्यापि) सर्व्वयापक, (सर्वविभु) सर्वशक्तिमान्, (अयातयामब्रह्म) निर्विकार ब्रह्म वाले, (ब्राही व्याहतिम्) ब्रह्म व्याहति (ब्रह्म दवतम्) ब्रह्म देवता वाले को (अपश्यत्) देखा। (तया) उस {ओम् व्याहति} से (सर्वान् च कामान्) सब कामनाओं, (सर्वान् च लोकान्) और सब लोको (सर्वान् च देवान्) और सब दिव्य पदार्थों, (सर्वान् च वेदान्) और सब वेदोन् (सर्वान् च यज्ञान्) और सब यज्ञो {देवपूजा संगतिकरण और दान} (सर्वान् च शब्दान्) और सब शब्दों (सर्वा च व्युष्टी) और सब विविध वसतियों, (सर्वाणि च स्थावरजङ्गमानि भूतानि) सब स्थावर और जङ्गम सत्ताओं को (अन्वभत्) उस {ब्रह्मा} ने बनाया। (तस्य उस) {ओम्} के (प्रथमेन वर्णेन) पहिले वण {अर्थात ओंकार} से (आप स्नेह च) व्यापक जल और चिकनाई को (अन्वभवत्) उसने बनाया। (तस्य द्विवितीयेन वर्णेन) उसके दूसरे वर्ण {अर्थात मकार} से (तेज) तेज {पराक्रम} और (ज्योतीषि) ज्योतियों {प्रकाशमान पदार्थों} को (अन्भवत्) उसने बनाया।

36. तस्य प्रथमया स्वरमात्रया...। गो पथ ब्राह्मण १.१७

पदार्थः (तस्य) उस {ओम्} की (प्रथमया स्वरमात्रया) पहिली स्वर मात्रा {अकार} से (पृथिवीम्, अग्निम् ओषधिवनस्पतीन्) पृथिवी, अग्नि, ओषधियों, वनस्पतियों, (ऋग्वेदम्) ऋग्वेद {पदार्थों की गुण प्रकाशक विद्या} (भू इति) भू {सर्वाधार परमात्मा है} (व्याहतिम्) व्याहति, (गायत्रम्) गान योग्य (छन्द) पूजनीय कर्म, (त्रिवृतम्) {परमेश्वर के कर्म उपासना और ज्ञान} तीन के साथ वर्तमान (स्तोमम्) स्तुति योग्य व्यवहार, (प्राची दिशम्) पूर्व वा सम्मुख वाली दिशा (वसन्त ऋतुम्) वसन्तु ऋतु, (अध्यात्मम्) आत्मा के जताने वाला मन्त्र (वाचम्) वाणी, (जिह्वाम्) जीभ, और (रसम् इति) रस (इन्द्रियाणि) इन्द्रियों {ज्ञान और कर्म के साधनों} को (अन्वभवत्) उस {ब्रह्मा} ने बनाया॥

37. तस्य द्वितीयया स्वरमात्रयान्तरिक्षं...। गो पथ ब्राह्मण १.१८

पदार्थः (तस्य) उस {ओम्} की (द्वितीयया स्वरमात्रया) दूसरी स्वर मात्रा {उकार} में (अन्तरिक्ष वायुम्) अन्तरिक्ष वायु (यजुर्वेदम्) यजुर्वेद {सत्कर्मों की विद्या} (भुव इति) भुव {सर्वव्यापक ब्रह्म है} (व्याहतिम्) व्याहति (त्रैष्टुभम्) तीन {सत्व, रज, तम} के बन्धन वाले (छन्द) आनन्ददायक वा पूजनीय कर्म, (पञ्चदशं) {पांच प्राण, अर्थात प्राण, अपान, व्यान, समान और उदान व पांच इन्द्रिय अर्थात श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, रसना, और घ्राण व पांच भूत अर्थात भूमि, जल, अग्नि, वायु और आकाश} इन पन्द्रह पदार्थ वाले (स्तोतम्) स्तुति योग्य व्यावहार, (प्रतीची दिशम्) पश्चिम वा पीछे वाली दिशा, (ग्रीष्मम् ऋतुम्) ग्रीष्म ऋतु, (अध्यातम्) आत्मा के जताने वाले यन्त्र {अर्थात} (प्राणम्) प्राण व श्वास (नासिके) दो नथने (गन्धघ्राणम् इति) गन्ध सूंघने के सामर्थ्य (इन्द्रियाणि) इन्द्रियों {ज्ञान और कर्म के साधनों} को (अन्वभवत्) उस {ब्रह्मा} बनाया॥

38. तस्य तृतीयया स्वरमात्रया...। गो पथ ब्राह्मण १.१९

पदार्थः (तस्य) उस {ओम्} की (तृतीयया स्वरमात्रया) तीसरी स्वरमात्रा {ओका} से (दिवम्) प्रकाश लोक (आदित्यम्) सूर्यमण्डल (सामवेदम्) सामवेद {मोक्ष विद्या}, (स्व इति) स्व {सुखस्वरूप परमात्मा है} (व्याहतिम्) व्याहति (जागतम्) जगत के हितकारक (छन्द) आनन्ददायक कर्म, (सप्तदशम्) सत्रह {चार दिशा, चार विदिशा, एक ऊपर की और एक नीचे की दश दिशाएं सत, रज और तम, ईश्वर, जीव और प्रकृति इन सोलह सहित सत्रह संसार कण्डिका ५} से सम्बन्ध वाले (स्तोतम्) स्तुति योग्य व्यवहार, (उदीची दिशम्) उतर दिशा (वर्षा ऋतुम्) वर्षा ऋतु (अध्यात्मम्) आत्मा के जताने वाला {अर्थात} (ज्योति) ज्योति, (चक्षुषी) दो आंख (दर्शनम् इति) देखने के सामर्थ्य (इन्द्रियाणि) इन्द्रियों {ज्ञान कर्म के साधनों} को (अन्वभवत्) उस {ब्रह्म} ने बनाया॥

39. तस्य वकारमात्रयापश् चन्द्रमसम्...। गो पथ ब्राह्मण १.२०

पदार्थः (तस्य) उस {ओम्} की (वकारमात्रया) वकार {प्रसारण से उकार} मात्रा से (अप) जल, (चन्द्रमसम्) चन्द्रमा, (नक्षत्राणि) नक्षत्रों {घूमते हुए तारा गणों}, (अथर्ववेदम्) अथर्ववेद (निश्चल ब्रह्म के ज्ञान), (ओम् इति स्वम् आत्मानम्) ओम् इस अपने आत्मा, (जनत् इति) जनत् {उत्पन्न करने वाला ब्रह्म है कण्डिका ८} इस (अङ्गिरसाम्) अनके ज्ञानों के (आनुष्टुभम्) निरन्तर स्तुति वाले (छन्द) आनन्ददायक कर्म, (एकविंशम्) {पांच सूक्ष्मभूत, पांच स्थूलभूत, पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय और एक अन्तःकरण कण्डिका १२} इक्कीस से सम्बन्ध वाले (स्तोमम्) स्तुति योग्य व्यवहार, (दक्षिणां दिशम्) दाहिनि वा दक्षिण दिशा, (शरदम् ऋतु,) (अध्यात्मम्) आत्मा के जताने वाले यन्त्र, {अर्थात} (मन) मन, (ज्ञानम्) ज्ञान, (ज्ञेयम् इति) ज्ञेय {जानने योग्य वस्तु}, (इन्द्रियाणि) इन्द्रियों {ज्ञान और कर्म के साधनों} को (अन्वभवत्) उस ब्रह्मा ने बनाया॥

40. तस्य मकारश्रुत्येतिहासपुराणं...। गो पथ ब्राह्मण १.२१

पदार्थः (तस्य) उस {ओम्} की (मकारश्रुत्या) मकार के श्रवण से (इतिहास पुराणम्) इतिहास और पुराण {बड़े लोगों और पुराने लोगों की वृत्तान्त विद्या कण्डिका १०} (वाक्) {बोलने के सामर्थ्य} (वाक्य) गायानाराशसी वाक्य {पदों के मिलान} गाथा {गाने योग्य वेदमन्त्र आदि} और नाराशसी {वी नरो की गुण कथाओं कण्डिका १० विशेष १ देखो} (अनुशासनानाम्) अनुशासन {शिक्षा वा उपदेशों} की (उपनिषद इति) उपनिषदो {ब्रह्म विद्याओं} अर्थात (वृधत्) वधत् {बढ़ती वालापरि पूर्ण ब्रह्म है} (करत्) करत {सृष्टिकर्ता ब्रह्म है} (गुहत्) गुहत {छिपा हुआ, अन्तर्यामी ब्रह्म है} (महत्) {पूजनीय ब्रह्म है} (तत्) तत् {फला हुआ ब्रह्म है पांच महाव्याहतियां कण्डिका १०} (शम्) {शान्ति वाला शान्तिकारक ब्रह्म है महाव्याहति कण्डिका ११} और (ओम्) ओम् {सर्वरक्षक ब्रह्म महाव्याहति कण्डिका ५} (इति व्याहती) {इन सात} व्याहतियों, (स्वरशम्य नानातन्त्री) स्वर से शान्त वा स्वस्थ करने वाली अनके तन्त्रियों {वीणा आदि विद्याओं} (स्वरनृत्यगीतवादित्राणि) स्वर सहित नाचने, गाने, बजाने {मृदङ्ग आदि बाजो की विद्याओं को} (अन्वभवत्) उस {ब्रह्मा} ने बनाया। (चैत्ररथम्) रमणीय गुण वाले (दैवतम्) दिव्य पदार्थों के समूह, (वैद्युतम्) विविध प्रकाश वाले (ज्योति) ज्योति (सूर्य आदि), (वार्हतम्) वेद वाणियों से जताए गये (छन्द) आनन्ददायक क्रम (तृणवत् त्रयस्त्रिंशौ) तीन कालों में स्तुति किये गये तैंतीस देवत वाले {कथ गायत्री अथर्ववेद ८.९.२०} (स्तोमौ) दो स्तुति योग्य व्यवहार {सृष्टि और प्रलय} (ध्रुवाम् ऊर्ध्वा दिशम्) नीचे और ऊपर की दिशा, (हेमन्त शिशिरौ ऋतू) हेमन्त और शिशिर दोनों ऋतुओं, (अध्यातमम्) आत्मा के जताने वाले यन्त्र {अर्थात} (श्रोत्रम्) कान (शब्द श्रवणम् इति) शब्द और सुनने योग्य सामर्थ्य (इन्द्रियाणि) इन्द्रियों {ज्ञान और कर्म के साधनों} को (अन्वभवत्) उस {ब्रह्मा} ने बनाया॥

41. सैषैकाक्षराऋग् ब्रह्मणस्तपसोऽग्रे...। गो पथ ब्राह्मण १.२२

पदार्थः (सा एषा एकाक्षरा ऋग्) वह यह एक अक्षर {अविनाशी ओम्} वाली ऋचा {स्तुति योग्य वाणी} (ब्रह्मण) ब्रह्मा {परमात्मा कण्डिका १६} के (तपस) तप से (अग्रे) पहिले ही पहिले (प्रादुर्बभूव) प्रकट हुआ।

(ब्रह्म) ब्रह्म {ओम्} वेद का (आथर्वणम्) अथर्वा {निश्चल ब्रह्म} से प्राप्त हुआ (शुक्रम्) सामथ्य है। (अत एव मन्त्रा प्रादुर्बभूवु) उसी {ओम्} से मन्त्र प्रकट हुए। (स तु खलु) और वह {पुरुष} निश्चय करके (अतपसा) तप के बिना (अशुश्रूषा=अशिश्रूषया) सेवा के बिना और अनध्यायाध्ययनेन) अध्या {पाठक्रम} तथा अध्ययन {पठन} के बिना (मन्त्राणाम्) मन्त्रों की (यत् ऊनम्) जो घटती (च च) और (विरिष्टम्) दोष (च) और (यातयामम्) समयक खोना (करोति) करे (तत्) उसको (अथर्वणाम्) निश्चल वेदों के (तेजसा) तेज से (प्रत्यप्याययेत्) भरपूर करे, (मन्त्राश्च) और मन्त्र भी (माम्) लक्ष्मी के (अभिमुखीभवेयु) सामने होवे (गर्भा इव मातरम्) जैसे गर्भ माता के {सामने होते हैं}। (अभिजिघांसु) सब ओर गति वाला {जिज्ञासु पुरुष} (पुरुस्तात्) पहिले (ओङ्कार) ओङ्कार को (प्रयुङ्कते) बोले। (एतया एव ऋचा) इसी ही ऋचा से (तत्) {दोष} को (प्रत्याप्याययेत्) भरपूर करे (एषा एव) यही {ऋचा} (यज्ञस्य पुरुस्तात्) यज्ञ के पहिले और (एषा पश्चात्) यही पीछे (युज्यते) बोली जाती है। (एतया) इस {ऋचा} से (सर्वत यज्ञ तायते) सब प्रकार यज्ञ फैलता है। (तत् एतत् अक्षरम्) सो इस अक्षर {अविनाशी ओम् शब्द} को (ब्राह्मण) ब्राह्मण {ब्रह्मज्ञानी} (य कामम् इच्छेत्) जिस इष्ट पदार्थ को चाहे (त्रिरात्रोपोषित) तीन रात्रि उपवास करता हुआ {अनाहार रहता हुआ} (प्राङ्मुख) पूर्व को मुख किये हुए, (वाग्यत) वाणी रोके हुये {मौन चुपचाप} (बर्हिषि उपविश्य) कुशासन पर बैठकर (सहस्रकृत्व) सहस्र बार (आवर्तयेत्) फेरता रहे {जपे}, (अस्य अर्था सर्वकर्माणि च) उसके मनोरथ और सब काम (सिध्यन्ति) सिद्ध होते हैं। (इति ब्राह्मणम्) यह ब्राह्मण {ब्रह्मज्ञान} है।

42. वसोर् धाराणाम् ऐन्द्रं...। गो पथ ब्राह्मण १.२३

पदार्थः (वसो) श्रेष्ठ गुण के (धाराणाम्) प्रवाहों को (ऐन्द्रनगरम्) इन्द्र का नगर {जीवात्मा का घर अर्थात मनुष्य शरीर है।} (तत् असुरा) उसको असुरों {कुविचारों} ने (पय्यवारयन्त) घेर लिया। (ते देवा भीता आसन्) व देवता {इन्द्रियां वा विद्वान} डरने लगे (क इमान् असुरान अपहनिष्यति इति) कौन इन असुरों को मार डालेगा। (ते ओङ्कार ब्रह्मण ज्येष्ठं पुत्र ददृशु) उन्होंने ओङ्कार, ब्रह्मा के जेठे पुत्र {पुत्र अर्थात नरक से बचाने वाले सन्तान वा मन्त्र} को देखा। (ते तम् अब्रुवन्) वे उससे बोले (भवता मुखेन इमान् असुरान् जयेम इति) हम आप मुखिया के द्वारा इन असुरो को जीते। (स ह उवाच) वह बोला (कि मे प्रतीवाह भविष्यिति इति) मेरे लिए क्या प्रतिफल होगा। {वे बोले} (वर वृणीष्व इति) त् वर {अभीष्ट फल} मांग। {वह बोला} (वृणै इति) मैं मांगू। (स वरम् अवृणीत) उसने वर मांगा (माम् अनीरयित्वा ब्राह्मणा ब्रह्म न वदेयं) मुझको न बोल कर ब्राह्मण {ब्रह्मज्ञानी} वेद को न बोल, (यदि वदेयु तत् अत्रहा स्यात्) जावे {मुझे न बोलकर} बोल वह वेद विरुद्ध होवे। {वे बोल} (तथा इति) वमा ही हो। (ते देवादेवयजनस्य उत्तरार्द्धे असुरै सयता आसन्) व देवता देवयज्ञ के पिछले आव भाग में असुरो से घेरे गये। (तान् असुरान् ओङ्कारेण आग्नी धीयात् देव पराभावयन्त) उन असुरो को ओङ्कार द्वारा अग्नि के प्रकाश करने वाले याजक के स्थान {यज्ञ मण्डप} से देवताओं ने हरा दिया। (तत् यत् परा भावयन्त) तरमात् ओङ्कार पूर्व उच्यते) सो जो उन्होंने हराया, उसी से ओङ्कार पहिले बोला जाता है। (य ह वै एतम् ओङ्कार न वेद अवश स्यात् इति) जो मनुष्य निश्चय करके इस ओङ्कार को न जाने, वह अप्रिय होवे। (अथ य एवं ब्रह्म वेद वश स्यात् इति) और जो व्यापक ब्रह्म को जाने, वह प्रिय होवे। (तस्मात ओङ्कार ऋचि ऋग, यंजुषि यजु, साम्नि साम, सूत्रे सूत्र, ब्रह्मणे ब्राह्मण, श्लोके श्लोक, प्रणवे प्रणव भवति इति ब्राह्मणम्) इसलिये ओङ्कार ऋग्वेद {पदार्थों की स्तुति विद्या} में ऋग्वेद, यजुर्वेद {सत्कर्मों की विद्या} में यजुर्वेद, सामवेद {मोक्ष विद्या} में सामवेद, सूत्र {अथर्ववेद वा शास्त्र तत्त्व} में सूत्र ब्राह्मण {ब्रह्म विद्या} में ब्राह्मण, श्लोक {यश} में श्लोक, प्रणव {स्तुति योग्य ओङ्कार} में प्रणव होता है, यह ब्राह्मण {ब्रह्म ज्ञान} है।

43. ओंकारं पृच्छामः को धातुः ...। गो पथ ब्राह्मण १.२४

पदार्थः (ओङ्कार पृच्छाम) ओङ्कार {के विषय} को हम पूछते हैं (क धातु) कौन धातु है।१। (किं प्रतिपविकम्) क्या प्रातिपदिक है।२। (किं नाम आख्यातम्) क्या नाम {संज्ञा} और आख्यात {क्रियापद} है।३,४। (किं लिङ्गम्) क्या लिङ्ग है।५। (किं वचनम्) क्या वचन है।६। (का विभक्ति) क्या विभक्ति है।७। (कः प्रत्ययः) कौन प्रत्यय है।८। (किं स्वर उपसर्गं निपातः) कौन स्वर, उपसर्ग और निपात है।९,१०,११। (किं वै व्याकरणम्) क्या {इसका} निश्चित व्याकरण है।१२। (क विकार) कौन विकार है।१। (क विकारी) क्या विकार वाला है।२। (कतिमात्र) कितनी मात्रा वाला है।३। (कतिवर्ण) कितने वर्ण वाला है।४। (कत्यक्षरा) कितने अक्षर वाला है।५। (कतिपद) कितने पद वा पाद वाला है।६। (क संयोग) कौन संयोग है।७। (कि स्थानानुप्रदानकरणम्) कौन सा स्थान अनुप्रदान और कारण है।८,९। (शिक्षका किम उच्चारयन्ति) शिक्षक लोक क्या बोलते हैं।१०। (किं छन्द) क्या छन्द है।११। (क वर्ण) कौन वर्ण {रङ्ग} है।१२। (इति पूर्वे प्रश्ना) यह पहिले प्रश्न हैं (अथ उत्तरे) अब पिछले {प्रश्न} हैं (मन्त्र) मन्त्र {गूढ़ विचार} में।१। (कल्प) {संस्कारविधान} में।२। (ब्राह्मणम्) ब्राह्मण ग्रन्थ में।३। (ऋग्) ऋग्वेद में।४। (यजु) यजुर्वेद में।५। (साम) सामवेद में।६। (कस्मात् ब्रह्मवादिन ओङ्कारम्) किसलिए ब्रह्मवादी लोग ओङ्कार को (आदित कुर्वन्ति) आरम्भ में करते हैं। (किं दैवतम्) क्या देवता है।७। (किं ज्योतिषम्) क्या ज्योति है।८। (किम निरुक्तम्) क्या निरुक्त है।९। (कि स्थानम्) क्या स्थान है।१०। (का प्रकृति) क्या प्रकृति है।११। (किं अध्यात्मम्) क्या अध्यात्म {आत्म ज्ञान} है।१२। (इति षटत्रिंशत् प्रश्ना) यह छतीस प्रश्न हैं। (पूर्वोत्तराणा त्रय वर्गा द्वादशका) पहिले और पिछले प्रश्नों के तीन वर्ग द्वादशक {बारह बारह के समूह} हैं। (एतै ओङ्कार व्याक्यास्याम) इन {प्रश्नों} से ओङ्कार की हम व्याख्या करेंगें।

44. इन्द्रः प्रजापतिम् अपृच्छत्...। गो पथ ब्राह्मण १.२५

पदार्थः (इन्द्र) इन्द्र {जीवात्मा} ने (प्रजापतिम्) प्रजापति {इन्द्रिय आदि के पालने वाले जीवात्मा अर्थात अपने} से (अपृच्छत्) पूछा (भगवन) हे भगवन! {ऐश्वर्य वाले} (अभिसूय) {विद्या में} सब ओर से स्नान करके (पृच्छामि इति) मैं पूछता हूं। {प्रजापति ने कहा} (व स पृच्छ) बच्चा! पूछ (इति) ऐसा {प्रजापति} (अब्रवीत्) बोला (किम् अयम् ओङ्कार) यह ओङ्कार क्या है।१। (कस्य पुत्र) यह किस का पुत्र {नरक से बचाने वाला सन्तान} है।२। (किञ्च एतत् छन्द) और यह क्या छन्द है {आनन्ददायक कर्म वा गायत्री आदि छन्द}।३। (किं च एतत् वर्ण) और क्या रङ्ग है।४। (किं एतत् ब्रह्म ब्रह्मा सम्पद्यते) और कौन से इस ब्रह्म को ब्रह्मा {सब वेदों का जानने वाला} प्राप्त करता है, (तस्मात् वै तत् भद्रम् ओङ्कारं पूर्वम् आलेभे) और उससे ही वह {ब्रह्मा} उस मंगलकारी ओङ्कार से पहिले पाता है।५।

{यहां शंका होती है} (स्वरितोवात एकाक्षर ओकार ऋग्वेदे) स्वरित उदात्त स्वर वाला, एक अक्षर वाला, ओंकार ऋग्वद में है। (त्रैस्वर्योदात्त एकाक्षर ओंकार यजुर्वेदे) तीनों स्वर {ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत} के सहित उदात्त एक अक्षर वाला ओंकार यजुर्वेद में है। (दीर्घप्लुतोदात्त एकाक्षर ओंकार सामवेदे) दीर्घ, प्लुत के सहित उदात्त एक अक्षर वाला ओंकार सामवेद में है। (ह्रस्वोदात्त एकाक्षर ओंकार अथर्ववेदे) ह्रस्व स्वर के साथ उदात्त एक अक्षर वाला ओंकार अथर्ववेद में है। (उदात्तोदात्तद्विपदा अ उ इति अर्धचतस्र मात्रा, मकारे व्यञ्जनम् इति आहु) उदात्त सहित उदात्त दो पद वाला अ उ यह साढ़े चार मात्राये हैं और मकार में व्यञ्चजन है, ऐसा कहते हैं।

{शंका समाधान} (या प्रथमा मात्रा सा ब्रह्मदेवत्या वर्णेन रक्ता) जो पहिली मात्रा है वह ब्रह्म देवता वाली रङ्ग से लाल है, (य ता नित्य ध्यायते स ब्राह्म्यं पदं गच्छेत) जो पुरुष नित्य उस {मात्रा} का ध्यान करे, वह ब्राह्म्य पद {ब्रह्म के स्थान} को प्राप्त हो। (या द्वितीया मात्रा सा विष्णुदेवत्या वर्णेन कृष्णा) जप दूसरी स्वर मात्रा है वह विष्णु देवता वाली रङ्ग से काली है। (य तां नित्यं ध्यायत स वैष्णवं पदं गच्छेत) जो पुरुष उसका नित्य ध्यान करे वह वैष्णव पद {विष्णु सब व्यापक परमात्मा के स्थान} को पावे। (या तृतीया मात्रा सा ऐशानदेवत्या वर्णेन कपिला) जो तीसरी स्वर मात्रा है वह ऐशान देवता वाली रङ्ग से पीली है, (य तां नित्यं ध्यायते स ऐशान पद गच्छेत) जो उस मात्रा का नित्य ध्यान करे, वह ऐशान पद {ईशान सबके ईश्वर परमात्मा के स्थान} को पावे। (या अधचतुर्थी मात्रा, सा सर्वदेवत्या व्यक्तीभूता खं विचरति वर्णेन शुद्धस्फटिकसन्निभा) जो आधी के साथ चौथी {डेढ़} स्वर मात्रा है वह सब देवताओं वाली प्रकाशमान होकर आकाश में विचरती है, रङ्ग के उज्जवल विल्लीरमणि के समान है, (य तां नित्य ध्याते स अनामकं पद गच्छेत) जो पुरुष उस {स्वर मात्रा} का नित्य ध्यान करे, वह अनामक पद {नाम शून्य परमात्मा के स्थान} क पावे। (ओंकारस्य च उत्पत्ति यः विप्र न जानाति तत् पुन उपनयनम्) और ओंकार की उत्पत्ति को जो ब्राह्मण नही जानता उसका फिर उपनयन संस्कार होवे {अर्थात वेद की विद्या फिर आरम्भ से पढ़े}

(तस्मात् ब्राह्मगवचनम् आदर्त्तव्यम्) इसलिये ब्राह्मण {ब्रह्मज्ञानी} का वचन आदर योग्य है। {पांच प्रश्नों के यह उत्तर है} (यथा) जैसे {यह बात} (लातव्य) ग्रहण योग्य है। (गोत्रः) पृथिवी का रक्षक १, (ब्रह्मणः पुत्र) ब्रह्मा का पुत्र {कण्डिका १६} २, (गायत्र छन्द) गायत्री {दैवी गायत्री} छन्द ३, (शुक्ल वर्ण) शुक्ल वर्ण {आदित्य वर्ण} ४, और (पुस) बढ़ाने वाला (वत्स) बसाने वाला (रुद्र) ज्ञान देने वाला, (वेदाना देवता) सब वेदों का देवता {प्रकाश विषय} (ओंकार) ओंकार ५, है।

45. को धातुर् इति आपृधातुः...। गो पथ ब्राह्मण १.२६

पदार्थः (क धातु इति) कौन धातु है (आपृ धातु अवतिम् आदाने तव्यत्। ग्राह्य (गोत्र) गो+त्रैड पालने क। भूमि रक्षक (पुस) पुस अभिवर्धने अच्। अभिवर्धक (वत्स) वृतवदिवचिवसि (उणादि ३.६२) वस निवासे स। निवासयिता (रुद्र) रु गतौ विवप्, तुक्+रादाने क ज्ञानदाता (देवना) प्रकाश्यविषय। (ओंकार) ओंकारस्य (वेदानाम्) वेदाना मध्ये॥

अपि एके) आपृ धातु है, अर्थात को भी कोई कोई (रुपसामान्यात् अर्थसामान्य नेदीय तस्मात् आपे ओंकर सर्वम् आप्नोति इति अर्थ) रुप की समानता की अपेक्षा अर्थ की समानता अधिक निकट होती है, इसीलिए आप् धातु से ओंकार सबमे व्याप्ता है यह अर्थ है।१। (कृदन्तम् अर्थवत् प्रातिपदिकम्) कृदन्त अर्थवान् शब्द प्रातिपदिक होता है, अर्थवदधातुरप्रत्यय प्रातिपदिकम् (पा. १.२.४५) अर्थवान् शब्द धातु और प्रत्यय को छोड़ कर प्रतिपदिक होता है।२। (अदर्शन प्रत्ययस्य नाम सपद्यते) प्रत्यय के अदशन संज्ञा होती है।३। (पा.१.१.६२) प्रत्यय के लोप होने पर भी प्रत्यय से होने वाला कार्य होता है। (निपातेष च एक ठीयाकरणा उदात्त समामनन्ति) और निपातों में इस को व्याकरण जानने वाले लोग उदात्त मानते हैं। (तत् अव्ययीभूतम् अन्वर्चवाची शब्द कदाचन न व्येति इति) सो अव्यय होता हुआ पद, अनुकूल अर्थ बताने वाला शब्द कभी भी विकार नही पाता है। (सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु)। वचनेषु च सर्वोषु यन्न व्येति तदव्ययम्) तीनो लिङ्गों में और सब विभक्तियों में जो सदृश है और जो सब वचनों में विकार नही पाता है, वह अव्यय है। (क विकारी) कौन विकार वाला है। (आप्नोति प्रसारणं च्यवते) आप् धातु सम्प्रसारण को पाता है। (आपौ अवकारौ विकार्यौ) आकार और पकार तथा अकार और वकार दोनों विकार योग्य हैं (आदित ओंकार विक्रियते द्वितिय मकार) आदि में ओंकार रुपान्तर वाला होता है और मकार दूसरा वर्ण है। (अवं द्विवर्ण एकाक्षर ओम् इति ओंकार निर्वृत)) इस प्रकार दो वर्ण वाला एक अक्षर वाला ओम् अर्थात ओंकार सिद्ध होता है।९,१०,११,॥२६॥

उणादि कोष में तो ओम् की सिद्धि इस प्रकार है अवतेष्टिलोपश्च (उणादि १.१४२) अव रक्षणे मन अन् भाग का लोप और अव् को ऊठ होकर और ऊठ् को गुण होकर ओम् शब्द सिद्ध हुआ। कितने वर्ण वाला और कितने अक्षर वाला ओम् दो वर्ण वाला एक अक्षर वाला है। लिङ्ग, वचन, विभक्ति और निपात इन चार प्रश्नों के उत्तर सदृङ त्रिषु इस कारिका में हैं।८.९.१०.११।

46. कतिमात्र इति आदेस्...। गो पथ ब्राह्मण १.२७

पदार्थः (कति मात्र इति) वह कितनी मात्रा वाला है? (आदे तिस्र मात्रा अभ्यादाने हि प्लवते मकार चतुर्तीम्) आरम्भ से तीन मात्राओं का मन्त्र के आरम्भ में ही वह प्राप्त होता है और मकार चौथी मात्रा को। (किं

स्थानम् इति) क्या स्थान है? (उभौ ओष्ठौ स्थान नादानुप्रदानकरणौ च) दोनों ओठ स्थान है और दोनो नाद बढ़ाने वाले प्रयत्न है, (द्वयस्थानं सन्ध्यक्षरम्) दो स्थान वाला सन्धि अक्षर होता है, (अवणलेश कण्ठ्य) अकार वर्णमात्र कण्ठ स्थान वाला है, (ययोक्तशेष पूर्व विवृतकरणस्थित च) और ऊपर कहे हुए का शेष पहिला वर्ण विवृति प्रयत्न में ठहरा हुआ है। (द्वितीय स्पृष्टकरणस्थित च) और दूसरा स्पृष्ट प्रयत्न में ठहरा हुआ है।९,१०,१३,१४,१५। (संयोग न विद्यते) संयोग नही है।१६। (संस्थानाध्यायिन आचार्याः पूर्वे बभूवुः श्रवणाद् एव प्रतिपद्यन्ते न कारणं पृच्छन्ति) व्यस्था विचारने वाले पहिले आचार्य हुए थे, आख्यात उपसग्र अनुदात्त, स्वरित्त, लिंग विभक्ति और वचन को सुनने से जान लेते हैं और कारण को नही पूछते १७,१८,१९,२०,२१,२२,२३॥

(अथापरपक्षीयाणां कविः पञ्चालचण्डः परिपृच्छक बभूवाम्=बभूव) फिर दूसरे पक्ष वालों का कवि पञ्चाल देशवासियों में तीव्र मनुष्य पूछने वाला हुआ। (उद्गीथदोषान् वु पृथक् भवन्त ब्रुवन्त्व् इति) उद्गीथ के दोषों को निश्चय करके अलग अलग लोग बतावें। (तद् वा अपि वर्ण अक्षर पद अंकश विभक्त्याम् उपलक्षयेत्) और यह भी वर्ण वर्ण अक्षर, पद पद और अंक अंक, करके विभक्ति में वतावे। (ऋषि निषेवितां वाचम् स्तुवन्ति इति तस्मात् कारणं ब्रूम) ऋषियों की निरन्तर सेवित वाणी को लोग सहारते हैं, इसलिए हम कारण बतलाते हैं। (वर्णानाम् अयम् इदं भविष्यति इति षडंगविद तत् तथा अधीमहे) वर्णों में यह वर्ण यह रूप हो जायेगा, यह षड्ग जानने वाले उसको वैसा ही हम पढ़ते हैं।

(किं छन्द इति) क्या छन्द है? (गायत्र हि छन्द) गायत्री ही छन्द है। (देवानां गायत्री वै एकाक्षरा श्वेतवर्णा च व्याख्याता) देवताओं की गायत्री एक अक्षर वाली और श्वेतवर्ण की कही गई है।

(द्वौ द्वादश कौ वर्गो एतत् वै व्याकरणम् धात्वर्थवचनं शैक्ष्यं छन्दोवचनं च) दो द्वादशक वर्ग हैं, यह धातु और अर्थ बताने वाला छन्द बताने वाला शिक्षा योग्य व्याकरण है। (अथ उत्तरौ द्वौ द्वादशकौ वर्गो वेदरहसिकी व्याख्याता) और पिछले दो बारह बारह क वर्ग है, वेदरहसिकी वतलायी गयी है। (मन्त्र कल्प ब्राह्मणम् ऋग् यजु साम अथर्वणि एषा व्याहृति) मन्त्र में, कल्प में ब्राह्मण ग्रन्थ मे, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद में यह व्याहृति है।१,८। (चतुर्णा वेदानाम् आनुपूर्वेण ओम् भू भुव स्व इति व्याहृतय) चारों वेदों की क्रम से ओम् भू, भुव, स्व व्याहृतियां है॥९,१०,११,१२॥

47. गो पथ ब्राह्मण १.२८

असमीक्ष्यप्रवल्हितानि श्रूयन्ते द्वापरादाव् ऋषीणाम् एकदेशो दोषपतिर् इह चिन्ताम् आपेदे त्रिभिः सोमः पातव्यः समाप्तम् इव भवति तस्माद् ऋग्यजुःसामान्य् अपक्रान्ततेजांस्य् आसन् तन्त्र महर्षयः परिदेवयां चक्रिरे महच् छोकभयं प्राप्ताः स्मः न चैतत् सर्वैः समभिहितम् ते वयं भगवन्तम् एवोपधावाम सर्वेषाम् एव शर्म भवानीति ते तथेत्य् उक्त्वा तूष्णीम् अतिष्ठन् नानुपसन्नेभ्य इति उपोपसीदामीति नीचैर् बभूवुः स एभ्य उपनीय प्रोवाच मामिकाम् एव व्याहृतिम् आदित आदितः कृणुध्वम् इति एवं मामका आधीयन्ते नर्ते भृग्वङ्गिरोविद्भ्यः सोमः पातव्यः ऋत्विजः पराभवन्ति यजमानो रजसापध्वस्यति श्रुतिश् चापध्वस्ता तिष्ठतीति एवम् एवोत्तरोत्तराद् योगात् तोकं तोकं प्रशाध्वम् इति एवं प्रतापो न पराभविष्यतीति तथा ह तथा ह भगवन् इति प्रतिपेदिर आप्याययन् ते तथा वीतशोकभया बभूवुस् तस्माद् ब्रह्मवादिन ओंकारम् आदितः कुर्वन्ति ॥

पदार्थः (असमीक्षप्रवह्लितानि श्रूयन्ते) विचार शून्य उड़ाउ बाते सुनी जाती हैं। (द्वापरादौ ऋषिणाम् एकदेश दोषपति इह चिन्ताम् आपेदे त्रिभि सोम पातव्य समाप्तम् इव भवति) द्वापर के आरम्भ में ऋषियों के बीच एक देश का रहने वाला दोषपति (बुराईयों का स्वामी) इस बात में चिन्ता करने लगा तीन के साथ सोमरस पीना चाहिए। पूरा किया हुआ सा कम होता है। (तस्मात् ऋग्यजु सामानि अपक्रान्ततेजांसि आसन्) उससे ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद बिना तेज वाले हो गये। (तत्र महर्षय परिदेवयाञ्चक्रिरे) उस पर महर्षि लोग विलाप करने लगे (महत् शोकभय प्राप्ता स्म) हमको बड़ा शोक और भय प्राप्त हुआ है। (न च एतत् सर्वे समभिहितम्) और यही नही सबने मिलकर कहा (ते वयम् भगवन्तम् एव उपधावाम) सो हम ऐश्वर्यवान के ही पास दौड़ कर चलें। (सर्वेषाम् एव शर्म भवानि इति) सब लोगों का ही शरण मैं हो जाऊं। (तथा इति ते उक्त्वा तृष्णीम् अतिष्ठन्) वैसा ही हो ऐसा कहकर वे चुपचाप बैठ गए। (न अनुपसन्नेभ्य इति) पास न रहने वालों के लिये मत हो (उपोपसीदामि इति) अति समीप मैं बैठता हूं। (नीचै बभूवु) वे नीचे को हो गये। (स उपनीय एभ्य प्र उवाच) वह पास जाकर इनसे कहने लगा (मामिकाम् एव व्याहृतिम् आदित् आदित् कृणुध्वम् इति एव मामका आधीयन्ते) मेरी ही व्याहृति को प्रत्येक मन्त्र के आदि में करो इस प्रकार मेरे लोग सब ओर से धारण किये जाते हैं।

(भृग्वङ्गरोविद्भ्य ऋते सोम न पातव्य) भृगु अङ्गिराओ के जानने वाले के बिना सोम रस न पीना चाहिए। (ऋत्विज पराभवन्ति यजमान रजसा अपध्वस्यति श्रुति च अपधवस्ता तिष्ठति इति) ऋत्विज् लोग हार जाते हैं, यजमान राग से गिर पड़ता है और श्रुति नष्ट होकर रहती है (एवम् एव उत्तरोत्तरात् योगात् तोकं तोकं प्रशाध्वम् इति) इस प्रकार से ही पिछले पिछले संयोग से संतान को शासन करो, (एवं प्रताप न पराभविष्यति इति) इस प्रकार प्रताप न हार पावेगा। (तथा आह तथा आह) वैसा ही उसने कहा वैसा ही उसने कहा। (भगवन् इति) हे भगवन्! (प्रतिपेदिरे आप्याययन्) वे समीप गये और बढ़ने लगे। (ते तथा वीतशोकभया बभृवु)....

आगे का भाष्य पुस्तक में उपलब्ध नही हुआ।

48. अध्यात्मम् आत्मभैषज्यम्...। गो पथ ब्राह्मण १.३०

पदार्थः (अध्यातमम्, आत्मभैषज्यम्, आत्मकैवल्यम् ओङ्कार) आत्मज्ञान का अधिकरण आत्मा का औषध और आत्मा का मोक्ष सुख ओङ्कार है। (सङ्गममात्री भूतार्थचिन्तां निरुध्य आत्मानम् चिन्तयेत्) संगति का वश रखने वाली प्राणियों की चिन्ता को रोक कर आत्मा को विचारे। (अतिक्रम्य वेदेभ्य सर्वपरम् अध्यात्मफल प्राप्नोति इति अर्थ, सवितर्कं ज्ञानयम् इति) उल्लंघन करके वेदों के द्वारा अर्थात सबसे श्रेष्ठ आत्मज्ञान के फल को पाता है, यह अर्थ है, अर्थात वितर्को के सहित ज्ञान से परिपूर्ण। (एतै प्रश्नै प्रतिवचनै च यथार्थ पदम् अनुविचिन्त्य प्रकरणज्ञ हि प्रबल विषयी स्यात्) इन प्रश्नों और उत्तरों से यथार्थ पद को निरन्तर विचार कर प्रबल प्रकरण जानने वाला, और विषय समझने वाला मनुष्य होवे। (सर्वस्मिन् वाको वाक्यम् इति ब्राह्मणम्)।

49. एतद् ध स्मैतद् विद्वांसम्...। गो पथ ब्राह्मण १.३१

पदार्थः (एत् ह स्म एतत्) यह बहुत प्रसिद्ध है (विद्वासम् एकादशाक्षम् मोदगत्यम् ग्लाव मैत्रेय अभ्याजगाम) विद्वान ग्यारह इन्द्रियों से युक्त शरीर वाले मौदगल्य के पास ग्लाव मैत्रेय आया। (स तस्मिन् ब्रह्मचर्य वसत विज्ञाय उवाच) वह उस पर ब्रह्मचर्य से रहते हुवे का ज्ञान फिर बोला (किं स्वित् मर्यादा अयं मौदगल्य तम् अध्येति यत् अस्मिन् ब्रह्मचर्य वसति इति) यह क्या मर्यादायें हैं। यह मौद्गल्य उस को पढ़ता है। जिसके लिये इस ब्रह्मचर्य से मनुष्य रहता है। (तत् हि मौदगल्यस्य अन्तेवासी शुश्राव) यह बात मौद्गल्य के शिष्य ने सुनी। (स आचार्य आव्रज्य आचचष्टे) वह आचार्य से आकर बोले (अयं भवन्तं वै दुर्धीयानम् अवोचत् य अयम् अद्य अतिथि भवति) इसने आपको निश्चय करके कुपढ़ बताया है जो यह आज अतिथि है। (किं सौम्य विद्वान इति) हे सौम्य! क्या यह विद्वान है? (त्रीन् वेदान् ब्रूते भो३इति) महाराज वह तीनों वेद बोलता है। (सौम्य विजिगीषो तस्य य विस्पष्ट अन्तेवासी तम् मे ह्वय इति) हे प्रियदर्शन! जीतने की इच्छा करने वाले! उसका जो विशेष करके स्पष्ट शिष्य है उसे मेरे पास बुला। (तम् आजुहाव) वह उसे बुला लाया, (तग् अभ्युवाच) और उस से बोला (असौ इति भो३इति) महाराज! वह यह है। (सौम्य ते आचार्य किम् अध्येति इति) हे प्रियदर्शन! तेरा आचार्य क्या पढ़ता है। (त्रीन् वेदान् ब्रूते भो३ इति) महाराज! यह तीनों वेदों को बोलता है। (सौम्य यत् नु खलु अस्माभि सर्वे वेदा मुखत गृहीता कथं ते आचार्य एव भाषते) हे सौम्य! क्योंकि हमने सब वेद मुख से ग्रहण किये हैं, तेरा आचार्य कैसे ऐसा कहते है। (कथं नु शिष्टा शिष्टेभ्य एव भाषेरन्) कैसे शिष्ट लोग शिष्टों से ऐसा बोलें। (यं हि एन प्रश्नम् अहं पृच्छामि न तं विवक्षयति न हि एनम् अध्येति इति) जिस इस प्रश्न को मैं पूछता हूं। उसको वह न बतायेगा वह इस को नही पढता है। (स ह मौदगल्य स्वम् अन्तेवासिनम् उवाच) फिर वह मौदगल्य अपने शिष्य से बोला (सौम्य परेहि ग्लावं मैत्रेयम् उपसीद) हे प्रियदर्शन! जा और चन्द्रवंशीय मैत्रेय से मिल (भो चतुर्विशतियोनिं द्वादशमियु सावित्री गायत्रीम् अवीहि) महाराज! चौबीस योनि वाली, बा जोड़ा वाली सविता देवता वाली गायत्री को पढ़। (यस्य भृग्वङ्गिरस चक्षु यस्या सर्वम् इद श्रितम् ताम् भवान् प्रब्रीतु इति) जिस भृगु आङ्गिरस नेत्र हैं, और जिसमें यह सब ठहरा हुआ है, उस गायत्री को समझावें। (आचाय्य उवाच) फिर आचार्य ने कहा (सौम्य स चेत् दुर्धीयान भविष्यति, वक्ष्यति, ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी सावित्री प्राह) हे सौम्य! यह जो कुपढ़ होवे, कहे, ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी सवित्री गायत्री बताता है। (तत्त्वं ब्रूयात्) ठीक ठीक कह दे (भवान् वै त मौद्गल्य दुर्धीयानम् अवोचत्) आप ही उस मौद्गल्य को कुपठ कहा है (स रवा प्रश्नम् अप्राक्षीत् तं पुरा न व्यवोच सवत्सरात् आर्तिम् आकृष्यसि इति) उसने तुझसे जो प्रश्न पूछा था, वह तूने हम सामने नही बता या है, एक वर्ण तुझे पीड़ा खींचनी होगी।

50. स तत्राजगाम ...। गो पथ ब्राह्मण १.३२

पदार्थः (स तत्र आजगाम यत्र इतर बभूव) वह वहां आया जहां दूसरा (तं ह पप्रच्छ स ह स प्रतिपेदे) उससे उसने पूछा और वह न बता सका। (तं ह उवाच) उससे वह बोला (भवान् त मौद्गल्य दुर्धीयानम् अवोचत्) आपनसे उस मौद्गल्य को कुपढ बताया है, (स त्वा यं प्रशम् अप्राक्षीत् तं पुरा न व्यवोच संवत्सरात् आर्तिम् आकृष्यसि इति) उसने तुझसे जो प्रश्न पूछा था वह तूने हमारे सामने नही बताया है, एक वर्ष तक तुझे पीड़ा खीचनी होगी। (स ह मैत्रेय स्वान् अन्तवासिन यथार्थम् उवाच) वह मैत्रेय अपने शिष्यों से ठी ठीक वाला (भवन्त यथागृह यथामन विप्रसृज्यन्ताम्) आप लोग अपने अपने घर को जैसा मन हो चले जावें, (अह वै मोद्गल्य दुर्धीयानम् अवोचम्) मैंने मोदगल्य को कुपढ़ बताया है, (स मा यं प्रशनम् अप्राक्षीत् त न व्यवोचम्) उसने मुझसे प्रश्न पूछा तो उसे मैंने न बताया (तम् उपैष्यामि शान्ति करिष्यामि इति) मैं उसके पास जाऊंगा और उसको शान्त करुंगा। (स ह समित्पाणि मैत्रेय प्रातः आग्रह मौदगल्यम् उपससाद) वह समिधा हाथ में लिये हुए प्रातःकाल अनुग्रहशील मौदगल्य के पांस पंहुचा (भो असौ मैत्रेय) महाराज! वह मैं मैत्रेय हूं (किं अर्थम् इति) किसलिये? (अह वै भवन्त दुर्धियानम् अवोचम्) मैंने आपको कुपढ़ बताया है, (त्वं मा य प्रश्नम् अप्राक्षी त न व्योवोचम्) तूने मुझसे जो प्रश्न पूछा था, वह मैंने नही बताया, (त्वाम् अपैष्यामि शान्ति करिष्यामि इति) तेरे पास आऊंगा और तेरी शान्ति करुंगा। (स ह उवाच) वह (अत्र वै उपेत च सब च कृत त्वा पापकेन यानेन चरन्तम् आह) यहां पर आये हुए सब काम कर चुके हुये तुझको पापि रथ से चलता हुआ बताते हैं, (अयम् मम रथ कल्याण त ते ददामि तेन याहि इति) यह मेरा रथ कल्याणकारी है वह मैं तुझे देता हूं उससे चल। (स ह उवाच) वह बोला (एतत् एव अत्र अत्विप च अनृशस्य च) यही कर्म यहां अभय और अक्रूर है। (यथा भवान् आह एव भवन्तम् उप आयाम् इति) जैसा आप कहते हैं वैसे ही आप के पास मैं आया हूं। (त ह उप इयाय) वह उस के पास आया, (त ह सपेत्य पप्रच्छ) और पास आकर उसे पूछा (भो सवितुर्वरेण्य भर्गो देवस्य कवया किस्वित् आहु) हे महाराज! सवितुर्वरेण्य भर्गो देवस्य इसका अर्थ कवि लोल क्या कहते हैं। (धिय किम् आहु) और धिय, और इस पद को क्या कहते हैं, (विचक्ष्व) बता (यदि सविता प्रविश्य ता प्रचोदयात् याभि एति इति) यदि सविता प्रवेश करके उन्हे आगे बढ़ता है, जिनसे वह चलता है।

(तैस्म एतत् प्र उवाच) उस स वह यह बात बोला (वेदा छन्दासि) वह छन्द है, (कवच देवस्य सवितुः वरेण्य भर्ग अन्नम् आहु) कवि लोग प्रकाशवान् सविता के अति श्रेष्ठ भग को अन्न कहते हैं। (कर्माणि धिय तत् उते ब्रवीमि) धिय कर्म है यह भी तुझे बताता हूं (सविता प्रचोदयात, याभी एति इति) सिवता आगे बढ़ता है और जिनसे चलता है।

(नम् उपसगृह्य पप्रच्छ) उसके पास आकर स जाकर उस ने पूछा (भो अधीहि क सिवता का सावित्री महाराज! पढ़ाओ कौन सविता है कौन सवित्री है।

51. मन एव सविता वाक्...। गो पथ ब्राह्मण १.३३

पदार्थः (मन एव सविता वाक् सावित्री) मन ही सविता और वाणी सावित्री (यत्र हि एव मन तत् वाक्, यत्र वै वाक् तत् मन इति एते द्वे योनी एकं मिथुनम्) जहां पर ही मन है वहां वाणी है, वहां वाणि है जहां पर ही वाणी है वहां मन है, यह दो योनि और एक जोड़ा है।१। (अग्नि एवं सविता पृथिवी सावित्री) अग्नि ही सविता और पृथिवी सावित्री है, (यत्र हि एव अग्नि तत् पृथिवी यत्र वै पृथिवी तत् अग्नि इति एते द्वे योनी एक मिथुनम्) जहां पर ही अग्नि है वहां पृथिवी जहां पर ही पृथिवी है वहां अग्नि है यह दो उत्पति स्थान और एक जोड़ा है।२। (वायु एवं सविता अन्तरिक्षम् सावित्री) वायु ही सविता और अन्तरिक्ष सावित्री है, (यत्र हि एव वायु तत् अन्तरिक्षम् यत्र वै अन्तरिक्ष तत् वायु इति एते द्वे योनी एक मिथुनम्) जहां पर वायु है वहां पर अन्तरिक्ष है, और जहां पर ही अन्तरिक्ष है वहां वायु है, यह दो उत्पति स्थान और एक जोड़ा है।३। (आदित्य एवं सविता द्यौ सावित्री) सूर्य ही चलाने वाला और प्रकाश चलाने वाले की सेवा करने वाली है, (यत्र हि एवं आदित्य तत् द्यौ यत्र वै द्यौ त्त आदित्य इति द्वे योनी एक मिथुनम्) जहां पर सूर्य है वहां पर प्रकाश है जहां पर प्रकाश है वहां पर सूर्य है, यह दो उत्पतिस्थान और एक जोड़ा है।४। (चन्द्रमा एव सविता नक्षत्राणि सावित्री) चन्द्रमा ही चलाने वाला और नक्षत्र चलाने वालो की सेवा करने वाली है, (यत्र हि एव चन्द्रमा तत् नक्षत्राणि यत्र वै नक्षत्राणि तत् चन्द्रमा इति एते द्वे योनी एक मिथुनम्) जहां ही चलाने वाला और नक्षत्र चलाने वालो की सेवा करने वाली है, (यत्र हि एव चन्द्रमा तत् नक्षत्राणि यत्र वै नक्षत्राणि तत् चन्द्रमा इति एते द्वे योनी एक मिथुनम्) जहां पर ही चन्द्रमा है वहां नक्षत्र है, जहां पर ही नक्षत्र है वहां चन्द्रमा है यह दो उत्पति स्थान और एक जोड़ा है।५। (अह एव सविता, रात्रि सावित्री) दिन ही सविता है और रात्रि सावित्री है (यत्र हि एव अह तत् रात्रि यत्र वै रात्रि तत् अह इति एते द्वे योनी एकं मिथुनम्) जहां पर ही दिन है वहां रात्रि है, जहां पर ही रात्रि है वहां दिन है, यह दो उत्पति स्थान और एक जोड़ा है।६। (उष्णम् एव सविता शीत सावित्री) ताप ही चलाने वाला और ठण्ड चलाने वाले की सेवा करने वाली है, (यत्र हि एव उष्णं तत् शीतम् यत्र वै शीत तत् उष्णम् इति एते द्वे योनी एक मिथुनम्) जहां पर ही ताप है वहां ठण्ड है, जहां पर ही ठण्ड है वहां ताप है यह दो उत्पति स्थान और एक जोड़ा है।७। (अब्भ्रम् एव सविता वर्षम् सावित्री) मेघ ही सविता और वर्षा ही सावित्री है, (यत्र हि एव अब्भ्रतम् तत् वर्षम् यत्र वै वर्ष तत् अब्भ्रम्, इति एते द्वे योगी एकं मिथुनम्) जहां पर ही मेघ है वहां वर्षा है, जहां पर ही वर्षा है वहां मेघ है यह दो उत्पति स्थान और एक जोड़ा है।८। (विद्युत एव सिवता स्तनयिम्नु सावित्री) बिजुली ही चलाने वाला और गर्जन चलाने वाले की सेवा करने वाली है, (यत्र हि एव विद्युत तत् स्तनयित्नु यत्र वै स्तनयित्नु तत् विद्युत इति एते द्वे योनी एक मिथुनम्) जहां पर ही बिजुली है वहां गर्जन है जहां पर ही गर्जन है वहां बिजुली है, यह दो उत्पति स्थान और एक जोड़ा है।९। (प्राण एव सविता अन्नं सावित्री) प्राण ही सविता है, अन्न सावित्री है (यत्र हि एव प्राण तत् अन्नं यत्र वै अन्नं तत् प्राण इति एते द्वे योनी एक मिथुनम्) जहां प्राण है, वहां अन्न है, जहां अन्न है वहां प्राण है, यह दो उत्पति स्थान और एक जोड़ा है।१०। (वेदा एव सविता छन्दांसि सावित्री) सब वेद ही चलाने वाला है और छन्द चलाने वाले की सेवा करने वाली है, (यत्र हि एव वेदा तत् छन्दासि यत्र वै छन्दासि यत्र वै छन्दासि तत् वेदा इति एते द्वे योनी एकं मिथुनम्) जहां पर ही वेद है वहां छन्द है, वहां वेद है, वह तो उत्पति स्थान और एक जोड़ा है।११। (यज्ञ एव सविता दक्षिणा सावित्री) यज्ञ ही सविता है और दक्षिणाएं सावित्री है, (यत्र हि एव यज्ञ तत् दक्षिणा, यत्र वै दक्षिणा तत् यज्ञ, इति एते द्वे योनी एकं मिथुनम्) जहां पर ही यज्ञ है वहां दक्षिणायें है, जहां पर ही दक्षिणाएं हैं वहां यज्ञ है, यह दो उत्पति स्थान और एक जोड़ा है।१२। (एतत् ह स्म एतत्) यह बहुत प्रसिद्ध है (विद्वांसम्) विद्वान को (ओपाकारिम्=आ उप अकारिम्) मैंने भली भांति उपकृत किया है (आस्तु ब्रह्मचारी तं सस्थित इति) थोड़ा सोने वाला ब्रह्मचारी तेरे लिये ठीक ठीक खड़ा है। (अथ एत आसस्तु आचित इव चित बभूव) और गतिशील थोड़ा सोने वाला पुरुष छकड़े के भार के समान संगृहीत होता है। (अथ उत्थाय प्राव्राजीत् इति एतत् वै अह वेद) और उठकर वह भ्रमण करता है। यही मैं जानता हूं (एतासु योनिषु इत एतेभ्य वा मिथुनेभ्य सम्भृत मम ब्रह्मचारी आयुष पुरा न प्रेयात् इति) इन उत्पति स्थानों में गया हुआ अथवा मेरा ब्रह्मचारी आयु से पहले न मरे॥

52. ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में ओ३म् महर्षि दयानन्द कृत

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ग्रन्थ के उपासना विषयक प्रकरण में महर्षि दयानन्द जी ने योगदर्शन के तस्य वाचकः प्रणवः (१.२७) सूत्र की व्याख्या करते हुए लिखा है जो ईश्वर का ओंकार नाम है सो पिता पुत्र के सम्बन्ध के समान है और यह नाम ईश्वर को छोड़ के दूसरे अर्थ का वाची नहीं हो सकता। ईश्वर के जितने नाम हैं, उनमें से ओंकार सब से उत्तम नाम है।" इसी प्रकरण में महर्षि ने योगदर्शन के अगले तज्जपस्तदर्थभावनम् (१.२८) सूत्र को उद्धृत कर इसकी व्याख्या करते हुए लिखा है "इसलिए इसी ('ओ३म्') नाम का जप अर्थात् स्मरण और उसी का अर्थ विचार सदा करना चाहिए कि जिससे उपासक का मन एकाग्रता, प्रसन्नता और ज्ञान को यथावत् प्राप्त होकर स्थिर हो।" महर्षि ने अष्टांग योग के दूसरे अंग नियम में जिसका निर्देश किया गया है उस स्वाध्याय में ओंकार के विचार का समावेश किया है।

'ओ३म्' को 'प्रणव' कहा जाता है। 'प्र' उपसर्ग पूर्वक 'णु स्तुतौ' इस धातु से 'प्रणव' शब्द निष्पन्न होता है। इस 'ओ३म्' पद के द्वारा ईश्वर की प्रकृष्ट रूप से स्तुति की जाती है, करनी चाहिए – इसीलिए इसे 'प्रणव' कहते हैं। ईश्वर के केवल एक ही नाम 'ओ३म्' को 'प्रणव' कहा जाता है। उसके किसी भी अन्य नाम को 'प्रणव' नहीं कहा जाता है। 'ओ३म्' को 'उद्गीथ' भी कहा जाता है। 'ओ३म्' के माध्यम से ईश्वर का उत्तम रूप से गान – स्तुति ध्यान किया जाता है, इसलिए उसे 'उद्गीथ' कहा जाता है। छान्दोग्य उपनिषद् आदि में 'उद्गीथ उपासना' का वर्णन पाया जाता है।

53. ओ३म् महर्षि पाणिनी व्याकरण की दृष्टि से

ओ३म् ईश्वर (परमात्मा, परमेश्वर, ब्रह्म) का सर्वश्रेष्ठ, सर्वोत्तम नाम है। 'ओम्' का ठीक से उच्चारण हो सके इसलिए उसे 'ओ३म्' लिखा जाता है। कई बार लोग 'ओम्' को 'ॐ' इस संकेत रूप में भी लिख देते हैं। 'ओ३म्' में जो तीन की संख्या '३' का समावेश है उसका तात्पर्य यह दर्शाने का है कि 'ओ' का उच्चारण प्लुत करना है। ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत – इन तीनों प्रकार से उच्चारण किया जाता है। ह्रस्व उच्चारण करने में जितना समय लगता है, इससे दुगना समय दीर्घ उच्चारण में और तीन गुना समय प्लुत उच्चारण में लगता है, इसलिए 'ओ३म्' में 'ओ' का प्लुत उच्चारण करना है, यही बताने के लिए 'ओ' के पश्चात् '३' संख्या लिखी जाती है। (गुजरात में कई बार लोग भूल से 'ओ३म्' का उच्चारण 'ओरूम्' करते हैं, क्योंकि गुजराती में 'रू' को '३' लिखा जाता है।)

ईश्वर एक द्रव्य, पदार्थ, वस्तु, सत्ता, नामी या वाच्य है। 'ओ३म्' उस ईश्वर का वाचक है, द्योतक है, संज्ञा या नाम है। ईश्वर अभिधेय है, 'ओ३म्' अभिधान है। ईश्वर पदार्थ है, 'ओ३म्' पद है। नाम से नामी का ज्ञान होता है। 'ओ३म्' से ईश्वर के स्वरूप की अभिव्यक्ति – प्रकाश होता है। ईश्वर और 'ओ३म्' नाम का नित्य सम्बन्ध है। जब हम कहते हैं कि 'ओ३म्' ईश्वर का नाम है या वाचक है, तब हम ईश्वर और 'ओ३म्' नाम के बीच प्रथम से विद्यमान नित्य सम्बन्ध को प्रकट करते हैं; कोई नया सम्बन्ध स्थापित नहीं करते हैं। 'ओ३म्' की अनेकानेक विशेषताएं हैं। अतः 'ओ३म्' पर प्रगाढ़ आस्तिक्य भाव से – ईश्वर प्रणिधान पूर्वक निरन्तर चिन्तन मनन – अर्थ भावना करने की आवश्यकता है; क्योंकि 'ओ३म्' का विचार ही प्रकारान्तर से ईश्वर विचार है।

54. ओ३म् सत्यार्थप्रकाश महर्षि दयानन्द कृत

सत्यार्थप्रकाश महर्षि दयानन्द का विश्व प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में चौदह समुल्लास (अध्याय / प्रकरण) हैं, परन्तु इसके प्रथम ही समुल्लास का आरम्भ 'ओ३म्' की व्याख्या से किया गया है। 'ओ३म्' को 'ओंकार शब्द' भी कह सकते हैं। 'ओ३म्' परमेश्वर का सर्वोत्तम, प्रधान अथवा निज नाम है। 'ओ३म्' को छोड़कर परमेश्वर के जितने भी अन्य नाम हैं वे सब गौणिक या गौण नाम हैं, मुख्य नाम तो केवल 'ओ३म्' ही है। 'ओ३म्' नाम केवल और केवल परमात्मा ही का नाम है। परमात्मा से भिन्न किसी अन्य पदार्थ का नाम 'ओ३म्' नहीं हो सकता है। यह भिन्न बात है कि कोई व्यक्ति स्वेच्छा से अपना या अन्य किसी व्यक्ति या ईश्वरेतर पदार्थ का नाम 'ओ३म्' रख लेवें।

अ उ म् इन तीन अक्षर मिलकर एक 'ओ३म्' समुदाय हुआ है। 'अ' और 'उ' मिलकर 'ओ' होता है। 'ओ' का प्लुत उच्चारण करना है इसलिए इसके आगे '३' लिखा जाता है। इस एक 'ओ३म्' नाम से परमेश्वर के बहुत नाम आते हैं – अनेकानेक नामों का समावेश हो जाता है। अ कार विराट्, अग्नि, वायु आदि नामों का; उ कार हिरण्यगर्भ, वायु, तैजस आदि नामों का; और म कार ईश्वर, आदित्य, प्राज्ञ आदि नामों का वाचक और ग्राहक है। वेदादि सत्य शास्त्रों में 'ओ३म्' का स्पष्ट व्याख्यान किया गया है। इन शास्त्रों में प्रकरण अनुकूल उपर्युक्त विराट्, अग्नि आदि सब नामों को परमेश्वर ही के नाम बताए गए हैं।

55. सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च। मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम्॥ गीता ८.१२

पदार्थः (इन्द्रियोंके) सम्पूर्ण द्वारों को रोककर मनका हृदय में निरोध करके और अपने प्राणों को मस्तक में स्थापित करके योग धारणा में सम्यक् प्रकार से स्थित हुआ जो 'ॐ' इस एक अक्षर ब्रह्म का उच्चारण और मेरा स्मरण करता हुआ शरीर को छोड़कर जाता है, वह परमगति को प्राप्त होता है।

56. तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपः क्रियाः। प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम् ॥ गीता १७.२४

पदार्थः इसलिये वैदिक सिद्धान्तोंको माननेवाले पुरुषों की शास्त्रविधिसे नियत यज्ञ, दान और तपरूप क्रियाएँ सदा 'ॐ' इस परमात्माके नामका उच्चारण करके ही आरम्भ होती हैं।

57. एतदक्षरमेतां च जपन् व्याहृतिपूर्विकाम्। सन्ध्ययोर्वेदविद्विप्रो वेदपुण्येन युज्यते ॥ मनु स्मृति २.७८ (महाव्याहृतियां की महती, महिमा, फलश्रुति)

पदार्थः (एतत्+अक्षरम्) इस {ओम्} अक्षर को (च) (व्याहृतिपूर्विकाम्) भूः भुवः स्वः इन व्याहृतियों सहित (एताम्) इस गायत्री ऋचा {मन्त्र} को {ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत् सवितुर्वरेण्यम्, भर्गो देवस्य धीमिहि। धियो यो नः प्रचोदयात्। इस मन्त्र को} (वेदवित् विप्रः) वेदपाठी द्विज (सन्ध्योः जपन्) दोनों सन्ध्याओं प्रातः, सायंकाल में जपते हुए (वेदपुण्येन यजुयते) वेदाध्ययन के पुण्य से ही युक्त होता है।

58. सहस्र कृत्वस्त्वभ्यस्य बहिरेतत् त्रिक्रं द्विजः। महतोऽप्येनसो मासात् त्वचेवाहिर्विमुच्यते॥ मनु स्मृति २.७९

पदार्थः (द्विजः) द्वज (एतत् त्रिकम्) इन तीनों अर्थात् व्याहृतियां और गायत्री मन्त्र को (बहिः) बाहर एकान्त में (सह्स्रकृत्वः तु अभ्यस्य) एक हजार बार प्रतिदिन जपते हुए (महतः+अपि+एनसः) बड़े भारी पाप से भी (मासात्) एक मास में (अहि त्वचा+इव) सांप की केंचुली के समान (विमुच्यते छूट जाता है॥

59. ओंकारपूर्विकास्तिस्रो महाव्याहृतयोऽव्ययाः। त्रिपदा चैव सावित्री विज्ञेयं ब्रह्मणो मुखम्॥ मनु स्मृति २.८१

पदार्थः (ओंकारपूर्विकाः तिस्रः अव्ययाः महाव्याहृतयः) जिनके पहले ओंकार=ओम् है, ऐसी अविनाशिनी महाव्याहृतियां भूः, भुवः, स्वः (च) और (त्रिपदा सावित्री) तीन पाद वाला गायत्री मन्त्र (मुखं विज्ञेयम्) इसे वेद का मुख समझना चाहिए।

60. योऽधीतेऽहन्यहन्येतां त्रीणि वर्षाण्यतन्द्रितः। स ब्रह्म परमभ्येति वायुभूतः खमूर्तिमान्॥ मनु स्मृति २.८२

पदार्थः (यः) जो व्यक्ति (एतान्) इनको अर्थात ओंकार सहित तीन महाव्याहतियों और गायत्री को (त्रीणि वर्षाणि अहनि+अहनि अतन्द्रितः अधीते) तीन वर्ष तक प्रति दिन आलस्य रहित होकर जपता है (सः) वह (वायुभूतः खमूर्त्तिमान) वायुरूप= इच्छानु सार विचरण करने वाला और आकाश रूप= सूक्ष्म शरीरी होकर (परमब्रह्म अभ्येति) परब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।

61. महाव्याहृतिभिर्होमः कर्त्तव्यः स्वयमन्वहम्। अहिंसासत्यमक्रोधमार्जवं च समाचरेत्॥ मनु स्मृति ११.२२२

पदार्थ: प्रायश्चित्तकाल में (अन्वहम्) प्रतिदिन (स्वयम्) प्रायश्चित्तकर्ता को स्वयं (महाव्याहृतिभिः होमः कर्त्तव्यः) महाव्याहृतियों {भूः, भुवः स्वः आदियुक्त मन्त्रों से} हवन करना चाहिए (च) और (अहिंसा सत्यम् अक्रोध आर्जवं समाचरेत्) अहिंसा, सत्य, क्रोधरहित रहना, कुटिलता न करना, इन बातों का पालन करे॥

अनुशीलनः महाव्याहृतियों से युक्त कुछ प्रसिद्ध मन्त्र निम्न हैं, जो यज्ञ में आज भी आहुति प्रदान के लिए प्रयुक्त होते हैं।

अग्नि प्रज्वलित मन्त्रः

ओ३म् भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा। तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे॥ यजुर्वेद ३.५

ओ३म् भूरग्नये स्वाहा। इदमग्नये इदन्न मम॥ ओ३म् भुवर्वायवे स्वाहा। इदं वायवे इदन्न मम॥ ओ३म् स्वरादित्याय स्वाहा। इदमादित्याय इदन्न मम॥ ओ३म् भूभुर्व स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा। इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः इदन्न मम॥ संस्कार विधि सामान्य प्रकरण

देव याग में पवमान आहुति में वेदमन्त्र से पूर्व महाव्याहृतियों का उच्चारण करना।

62. भूर्भुवः सुवरिति वा एतास्तिस्रो व्याहृतयः। तासामु ह स्मैतां चतुर्थीम्। माहाचमस्यः प्रवेदयते। मह इति। तद्ब्रह्म। स आत्मा। अङ्गान्यन्या देवताः। भूरिति वा अयं लोकः। भुव इत्यन्तरिक्षम्। सुवरित्यसौ लोकः॥ तैतरियोपनिषद ५.१

पदार्थ: (भूः भुवः, सुवः, इति, वै, तिस्रः, व्याहृतयः) भूः भुवः स्वः, ये तीन व्याहतियां हैं। (तासाम्) उनमें (उ, ह, स्म) बीते हुए काल में (एताम्, मह ,इति) इस 'महः' (चतुर्थम् चौथी) व्याहति को (माहाचमस्यः) महाचमस नाम ऋषि का पुत्र माहाचमस्य प्रवेदयते अच्छे प्रकार जानता था। तद्, ब्रह्म वह महः ब्रह्म है सः, आत्मा वह आत्मा है। अन्याः देवताः अन्य सूर्यादि देवता अंगानि ब्रह्म के उत्पन्न किये हुए जगत् के अंग हैं। अयम्, लोकः, वै, भूः इति यह पृथिवी लोक भूः है। अन्तरिक्षम्, भुव, इति अन्तरिक्ष 'भुवः' है असौ लोकः सुवः, इति यह द्यौ लोक 'स्वः' है।

63. मह इत्यादित्यः। आदित्येन वाव सर्वे लोका महीयन्ते। भूरिति वा अग्निः। भुव इति वायुः। सुवरित्यादित्यः। मह इति चन्द्रमाः। चन्द्रमसा वाव सर्वाणि ज्योतींषि महीयन्ते। भूरिति वा ऋचः। भुव इति सामानि। सुवरिति यजूंषि ॥ तैतरियोपनिषद ५.२

पदार्थ: (आदित्यः , महः इति) सूर्य 'महः'है। आदित्येन वाव सूर्य ही से (सर्वे, लोकाः) समस्त लोक महीयन्ते बढ़ते हैं। अग्निः, वै, भूः, इति अग्नि भूः है 8/। वायुः , भुवः, इति वायु 'भुवः' है, आदित्यः, सुवः, इति सूर्य 'स्वः' है। चन्द्रमाः, महः, इति चन्द्रमा 'महः' है। चन्द्रमसा, वाव चन्द्रमा ही से सर्वाणि ज्योतींषि समस्त ज्योतियाँ महीयन्ते महिमा शीतलता प्राप्त करती हैं। ऋचः, वै, भूः, इति ऋचाएं 'भूः' है। सामानि, भुवः, इति साम 'भुवः' हैं। यजूंषि, सुवः, इति यजुः 'स्व' हैं।

64. मह इति ब्रह्म। ब्रह्मणा वाव सर्वे वेदा महीयन्ते। भूरिति वै प्राणः। भुव इत्यपानः। सुवरिति व्यानः। मह इत्यन्नम्। अन्नेन वाव सर्वे प्राणा महीयन्ते। ता वा एताश्चतस्रश्चतुर्धा। चतस्रश्चतस्रो व्याहृतयः। ता यो वेद। स वेद ब्रह्म। सर्वेऽस्मै देवा बलिमावहन्ति॥ तैतरियोपनिषद ५.३

पदार्थ: ब्रह्म, महः इति ब्रह्म 'महः' है। ब्रह्मणा, वाव, सर्वे, वेदा महीयन्ते ब्रह्म ही से समस्त वेद महत्ता प्राप्त करते हैं। प्राणः, वै, भूः, इति प्राण 'भूः' , हैं। अपानः, भुवः, इति अपान 'भुवः' हैं। व्यानः, सुवः इति व्यान 'स्वः' हैं। अन्नम्, महः, इति अन्न 'महः' है। अन्नेव वाव अन्न ही से सर्वे प्राणाः महीयन्ते समस्त प्राण महिमा वाले हैं। ताः वै, एता, चतस्रः वे ही ये चार व्याहतियां चतुर्धा चार प्रकार की हैं। व्याहृतयः, चतस्रः चतस्रः अर्थात् एक एक व्याहति चार चार प्रकार की हैं। यः, ताः, वेद जो इन्हें जानता है। सः ब्रह्म वेद वह ब्रह्म को जानता है। अस्मै इस व्याहतियों के ज्ञाता को सर्वे, देवाः सब विद्वान् बलिम् बलि भेंट आवहन्ति लाते हैं। इस अनुवाक में, दो खण्डों के अन्तिम शब्द 'असौ लोको' और 'यजूंषि' और तीसरे खण्ड में उस वाक्य के बाद, जिसके अन्त में 'वेद' है। दो वाक्य और हैं। व्याख्या इस अनुवाक में व्याहतियों की महत्ता प्रकट की गई हैं। वेद में एक जगह ईश्वर को ''वाचि व्याहृतायाम्'' (यजुः ८.५.४) कहा गया है। (१) इन प्रारम्भिक तीन व्याहतियों के द्वारा ईश्वर का स्वरूप प्रकट किया गया है। ''भू सत्तायाम्'' धातु से, भूः के अर्थ हैं, सत्, ''भुव अविचिन्तने'' धातु से भुवः के अर्थ चित् के हैं। स्वः आनन्द को कहते हैं। इस प्रकार भूः भुवः स्वः के अर्थ सच्चिदानन्द हुए। यही ईश्वर का स्वरूप है। महः उस सच्चिदानन्द स्वरूप वाले ईश्वर की महत्ता का द्योतक है। माहाचमस्य नामक विद्वान् इस बात का ज्ञान रखता और प्रचार करता था। (२) एकेश्वरवाद की उत्तम रीति से पुष्टि करने ही के लिए उपनिषद् के इस वाक्य में कहा गया है कि महः अर्थात् महानतम उपास्य तो ईश्वर ही है। अन्य सूर्यादि देवता उस महान् ईश्वर के रचे जगत् के अंगोपांग ही हैं। (३) अब व्याहतियों की व्यापकता दिखलाते हुए प्रत्येक व्याहति के चार चार भेद प्रकट किए गए हैं। (१) भूः पृथिवी, अग्नि, ऋचा, प्राण। (२) भुवः अन्तरिक्ष, वायु, साम, अपान। (३) स्वः द्युलोक, आदित्य, यजुः, व्यान। (४) महः आदित्य, चन्द्रमा, ब्रह्म, अन्न। इन चारों वेदों के तीन विभाग किए जाते हैं। पहले विभाग में ईश्वर की व्यापकता समस्त भूतों और समस्त लोकों में दिखलाई गई है। इसके लिए व्याहतियों के प्रथम दो भेद इस (पहले) विभाग के अंग हैं। दूसरे विभाग में ईश्वर की व्यापकता, ज्ञान रूप से प्रकट की गई है।

65. य एष एतस्मिन्मण्डले पुरुषस्तस्य भूरिति शिर एकं शिर एकमेतदक्षरं भुव इति बाहू द्वौ बाहू द्वे एते अक्षरे स्वरिति प्रतिष्ठा द्वे प्रतिष्ठे द्वे एते अक्षरे तस्योपनिषदहरिति हन्ति पाप्मानं जहाति च य एवं वेद॥ बृहदारण्क्योपनिषद ५.५.३

पदार्थ: (यः एषः एतस्मिन् मण्डले पुरुषः) जो यह इस (सूर्य) मण्डल में पुरुष है। (तस्य शिरः भूः इति) उसका शिर (मानो) 'भूः' है। (एकम् शिरः एतद्) शिर एक (होता) है और इस 'भूः' में (भी) (एकम् अक्षरम्) एक अक्षर है, (भुवः इति बाहू) 'भुव' (मानो उसकी) बाहू है (द्वौ बाहू द्वे एते अक्षरे) बाहू दो हैं दो ही 'भुव' अक्षर हैं (स्वः इति प्रतिष्ठा) स्वः (मानो उस पुरुष के) पैर है। (द्वे प्रतिष्ठे द्वे एते अक्षरे) पैर दो हैं दो ही 'स्वः' के अक्षर हैं (तस्य उपनिषद् अहः इति) उसकी उपनिषद (अर्थात् उपनिषद् का नाम) दिन (प्रकाश) है (यः एवम् वेद पाप्मानं हन्ति) जो ऐसा जानता है, पापों को (वह) (जहाति च) नष्ट कर देता और छोड़ देता है।

66. योऽयं दक्षिणेऽक्षन्पुरुषस्तस्य भूरिति शिर एकं शिर एकमेतदक्षरं भुव इति बाहू द्वौ बाहू द्वे एते अक्षरे स्वरिति प्रतिष्ठा द्वे प्रतिष्ठे द्वे एते अक्षरे तस्योपनिषदहमिति हन्ति पाप्मानं जहाति च य एवं वेद॥ बृहदारण्क्योपनिषद ५.५.४

पदार्थ: जो यह दक्षिण आँख में पुरुष है उसका शिर भू है, शिर एक (होता है) इस (भूः) में भी एक अक्षर है। इसकी बाहू भुवः है। बाहू दो (होते हैं) इस (भुवः) में भी दो अक्षर हैं। स्वः इसका पैर है। दो पैर (होते हैं) इस (स्वः) में भी दो ही अक्षर हैं। इस (पुरुष) की उपनिषद् (उपनिषद्नाम) दिन प्रकाश हैं। जो ऐसा जानता है पापों को (वह) नष्ट कर देता और छोड़ देता है।

67. सत्यार्थ प्रकाश तृतीय समुल्लास महाव्याहृतियां

तीन महाव्याहृतियों 'भूः, भुवः स्वः' के अर्थ भी संक्षेप से कहते हैं। 'भूरिति वै प्राणः' 'यः प्राणयति चराऽचरं जगत् स भूः स्वयम्भूरीश्वरः' जो सब जगत् के जीवन का आधार, प्राण से भी प्रिय और स्वयम्भू है, उस प्राण का वाचक होके 'भूः' परमेश्वर का नाम है। 'भुवरित्यपानः' 'यः सर्वं दुःखमपानयति सोऽपानः' जो सब दुःखों से रहित, जिस के संग से जीवन सब दुःखों से छूट जाते हैं इसलिये उस परमेश्वर का नाम 'भुवः' है। 'स्वरिति व्यानः' 'यो विविधं जगद् व्यानयति व्याप्नोति स व्यानः' जो नानाविध जगत् में व्यापक होके सब का धारण करता है, इसलिये उस परमेश्वर का नाम 'स्वः' है।

68. ब्रह्म हेदं श्रियं प्रतिष्ठाम्...। गो पथ ब्राह्मण १.३४ (गायत्री मन्त्र, सवित्री मन्त्र की व्याख्या, फलश्रुति)

पदार्थ: (इद ब्रह्म ह श्रिय प्रतिष्ठाम् आयतनम् ऐक्षत) {मौदगल्य कहते है} इस ब्रह्म ने ही श्री की प्रतिष्ठा और आश्रय देखा। (तत् तपस्व यदि तत् व्रते) ध्रियते तत् सत्ये प्रत्यतिष्ठत् हे मैत्रेय! वह तप कर, यदि उस वर्त में आप रक्खे जावे तो आप सत्य में जम जावें। (स सविता सवित्र्या ब्राह्मण सृष्टवा तत् सावित्री पय्यदधात्) उस सविता ने सावित्री के साथ ब्राह्मण को उत्पन्न करके उसके लिये सावित्री को ठहराया, (तत्सवितु वरेण्यम् इति सावित्र्या प्रथम पाद) उस सविता का अति श्रेष्ठ {तेज} है। यह सावित्री का पहिला पाद है। (पृथिव्या ऋचम्, ऋचा अग्निम्, अग्निना श्रियम्, श्रिया स्त्रियम् स्त्रिया मिथुनम्, मिथुनेन प्रजाम्, प्रजया कर्म, कर्मणा तप, तपसा सत्यम्, सत्येन ब्रह्म, ब्रह्मणा ब्राह्मणम् ब्राह्मणेन व्रतम् समदधात्) पृथिवी के साथ ऋग् {स्तुति योग्य विद्या} को उस {पहिले पाद} ने, ऋग् के साथ अग्नि को, अग्नि के साथ श्री {शोभा सम्पति} को श्री के साथ स्त्री को, स्त्री के साथ जोड़ {पुरुष संयोग} को जोड़ के साथ प्रजा {सन्तान} को, प्रजा के साथ कर्म को, कर्म के साथ तप {ब्रह्मचर्य आदि} को, तप के साथ सत्य {यथार्तता} को, सत्य के साथ ब्रह्म {वेदज्ञान} कोप वेदज्ञान के साथ ब्राह्मण {वेदज्ञानी} को, व्राह्मण के साथ व्रत {जितेन्द्रियता आदि} को ठहराया। (व्रतेन वै ब्राह्मण संशित भवति, अशून्य भवति, अविच्छिन्न भवति, अविच्छिन्न अस्य तन्तु, अविच्छिन्न जीवनं भवन भवति, य एक वेद य च एव विद्वान एवम् एत सावित्र्या प्रथम पाद व्याचष्टे) व्रत {जितेन्द्रियता आदि} से ही वह ब्राह्मण {वेदज्ञानी} तीक्ष्ण बुद्धि वाला {वा यत्नवान} होता है, शून्य बिना {परिपूर्ण} होता है, अनकट होता है, अनकट उसका वश अनकट जीवन अस्तित्व {ठहराव} होता है, जो ऐसा जानता है और जो ऐसा जानकार पुरुष इस प्रकार से सावित्री के इस पहिले पाद को बताता है।

69. भर्गो देवस्य धीमहीति...। गो पथ ब्राह्मण १.३५

पदार्थ: (भर्गो देवस्य धीमहि इति सावित्र्या द्वितीय पाद) प्रकाशमान परमेश्वर के तेज को हम धारण करे यह सावित्री का दूसरा पाद है। (अन्तरिक्षेण यजु समदधात्, यजुषा वायुम्, वायुना अब्भ्रम्, अब्भ्रेण वर्षम्, वर्षेण ओषधिवनस्पतीन्, ओषधिवनस्पतिभि पशून्, पशुभि कर्म, कर्मणा तप, तपसा सत्यम्, सत्येन ब्रह्म, ब्रह्मणा ब्राह्मणम्, ब्राह्मणेन व्रतम्) अन्तरिक्ष {आकाश} के साथ यजु {पूजनीय कर्म वा संगति कर्म} को उस {दूसरे पाद} ने ठहराया, यजु के साथ वायु को, वायु के साथ जल रखने वाले मेघ को, मेघ के साथ वर्षा को, वर्षा के साथ औषधियों {सोमलता, यव आदि} और वनस्पतियों {पीपल आदि} को औषधि और वनस्पतियों के साथ पशुओं {जीवों} को, पशुओं के साथ कर्म को, कर्म के साथ तप {ब्रह्मचर्य आदि} को, तप के साथ सत्य {यथार्थता} का सत्य के साथ ब्रह्म {वेदज्ञान} को, वेदज्ञान के साथ ब्राह्मण {वेदज्ञानी} को, ब्राह्मण के साथ व्रत {जितेन्द्रियता आदि} को। (व्रतेन वै ब्राह्मण शशित भवति, अशून्य भवति अविच्छिन्न भवति, अविच्छिन्न अस्य तन्तु, अविच्छिन्न जीवन भवति, य एव वेद, य च एव विद्वान एवम् सावित्र्या द्वितीय पाद व्याचष्टे) व्रत {जितेन्द्रियता आदि} से ही वह ब्राह्मण {वेदज्ञानी} तीक्ष्ण बुद्धि वाला {वा यत्नवान्} होता है, शून्य बिना {परिपूर्ण} होता है, अनकट होता है, अनकट उसका ताता {वंश} अनकट जीवन होता है, जो ऐसा जानता है और जो ऐसा जानकर पुरुष इस प्रकार से सावित्री के इस दूसरे पाद को बताता है।

70. धियो यो नः प्रचोदयाद् इति सावित्र्यास् तृतीयः पादः...। गो पथ ब्राह्मण १.३६

पदार्थ: (धियो यो न प्रचोदयात् इति सावित्र्या तृतीय पाद) जो हमारी वुद्धियों वा कर्मों को आगे बढ़ावे वह सावित्री का तीसरा पाद है। (दिवा साम, साम्ना सावित्यम् आदित्येम् रश्मीन्, रश्मिभि वर्षम्, वर्षेण

ओषधिवनस्पतीन्, ओषधि वनस्पतिभि पशून, कर्म, कर्मणा तप, तपसा सत्यम्, सत्येन ब्रह्म ब्रह्मणा (ब्राह्मणम्, ब्राह्मणेन व्रतम् समदधात्) प्रकाश के साथ साम {मोक्षज्ञान} को साम के साथ प्रकाशमान वा रस लेने वाले सूर्य को, सूर्य के साथ किरणों की, किरणों के साथ वर्षा की वर्षा के साथ औषधियों {सोमलता यव अग्नि} और वनस्पतियों {पीपल आदि} को, औषधि और वनस्पतियों के साथ पशुओं {जीवों} को, पशुओं के साथ कर्म को, कर्म के साथ तप ब्रह्मचर्य आदि को, तप के साथ सत्य को सत्य के सात ब्रह्म {वेदज्ञान} को, वेदज्ञान के साथ ब्राह्मण {वेदज्ञानी} को, ब्राह्मण के साथ व्रत {जितेन्द्रियता आदि} को उस {तीसरे पाद} ने ठहराया। (व्रतेन वै ब्राह्मण शंशित भवति, अशून्य भवति, प्रविच्छिन्न भवति, अविच्छिन्न अस्य तन्तु अविच्छिन्न जीवनं भवति, य एवं वेद, य एवं विद्वान् एवम् एतम् सावित्र्या तृतीय पादं व्याचष्टे) व्रत {जितेन्द्रियता आदि} से ही वह ब्राह्मण {वेदवाणी} तीक्ष्ण बुद्धि वाला {वा यत्नवान्} होता है, शून्य बिना {परिपूर्ण} होता है, अनकट होता है, अनकट उसका ताता {वश}, अनकट जीवन होता है, जो ऐसा जानता है और ऐसा जानकर पुरुष इस प्रकार से सावित्री के तीसरे पाद को बताता है।

71. त्रिभ्य एव तु वेदेभ्यः पादं पादमदूदुहत्। तदित्यृचोऽस्याः सावित्र्याः परमेष्ठी प्रजापतिः॥ मनु स्मृति २.७७

पदार्थः (परमेष्ठी प्रजापतिः) सबसे महान् परमात्मा ने (तत्+इति+अस्याः सावित्र्याः ऋचः) तत् इस पद से प्रारम्भ होने वाली सावित्री ऋचा {गायत्री मन्त्र} का एक एक पाद { प्रथम पाद है तत्सवितुर्वरेण्यम्, द्वितीय पाद भर्गो देवस्य धीमहि, तृतीय पाद धियो यो नः प्रचोदयात्} (त्रिभ्यः+एव तु वेदेभ्यः) तीनों वेदों से दुहकर सार रूप में बनाया है।

72. समाहृत्य तु तद् भैक्षं यावदन्नममायया। निवेद्य गुरवेऽश्नीयादाचम्य प्राङ्खः शुचिः ॥ मनु स्मृति २.५१

पदार्थः (प्रजापतिः) परमात्मा ने (अकारम् उकारं च मकारं) ओ३म् शब्द अ उ और म् अक्षरों को (अ+उ+म=ओम्) (च) तथा (भूः भुवः स्वः इति) भूः, भुवः स्वः गायत्री मन्त्र की इन तीन व्याहृतियों को (वेदत्रयात् निरदुहत्) तीनों वेदों से दुहकर सार रूप में निकाला है।

73. एतदक्षरमेतां च जपन् व्याहृतिपूर्विकाम्। सन्ध्ययोर्वेदविद्विप्रो वेदपुण्येन युज्यते ॥ मनु स्मृति में २.७८

पदार्थः (एतत्+अक्षरम्) इस {ओम्} अक्षर को (च) (व्याहृतिपूर्विकाम्) भूः भुवः स्वः इन व्याहृतियों सहित (एताम्) इस गायत्री ऋचा {मन्त्र} को {ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत् सवितुर्वरेण्यम्, भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्। इस मन्त्र को} (वेदवित् विप्रः) वेदपाठी द्विज (सन्ध्योः जपन्) दोनों सन्ध्याओं प्रातः, सायंकाल में जपते हुए (वेदपुण्येन यजुयते) वेदाध्ययन के पुण्य से ही युक्त होता है।

74. एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामाः परं तपः। सावित्र्यास्तु परं नास्ति मौनात्सत्यं विशिष्यते॥ मनु स्मृति २.८३

पदार्थः (एकाक्षरं परं ब्रह्म) एक अक्षर अर्थात ओम् ही परब्रह्म है (प्राणायामः परं तपः) प्राणायाम करना ही श्रेष्ठ तप है (सावित्र्याः तु परं नास्ति) गायत्री से बढ़कर दूसरा कोई मन्त्र नही है (मौनात् सत्यं विशिष्यते) मौन की अपेक्षा सत्य भाषण विशिष्ट है।

75. विधियज्ञाज् जपयज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैः। उपांशुः स्याच्छतगुणः सहस्रो मानसः स्मृतः॥ मनु स्मृति २.८५

पदार्थः (विधियज्ञात्) विधियज्ञ अर्थात अमावस्या, पूर्णिमा आदि विशेष उपलक्ष्यों पर किये जाने वाले यज्ञों से (जप यज्ञः) जप यज्ञ=स्पष्टोच्चारण पूर्वक जप करना (दशभिर्गुणैः) दश गुना विशेष है। (उपांशु शतगुणः स्यात्ः) उपांशु=जिसमें धीरे धीरे ओंठो से ही उच्चारण किया जाए, वह सौ गुणा विशेष है (मानसः साहस्रः स्मृतः) मानस जाप= सहस्र गुना विशेष है।

76. ये पाकयज्ञाः चत्वारो विधियज्ञसमन्विताः। सर्वे ते जपयज्ञस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ मनु स्मृति २.८६

पदार्थः (विधियज्ञसमन्विताः) विधियज्ञ सहित (ये चत्वारः पाकयज्ञाः) जो चार पाक यज्ञ (ते सर्वे जपयज्ञस्य) वे सब जपयज्ञ की (षोडशी कलां नार्हन्ति) सोलहवीं कला के योग्य भी नही हैं।

77. अपां समीपे नियतो नैत्यिकं विधिमास्थितः। सावित्रीमप्यधीयीत गत्वाऽरण्यं समाहितः॥ मनु स्मृति २.१०४

पदार्थः (अरण्यं गत्वा) जंगल में अर्थात् एकान्त देश में जा (समाहितः) सावधान हो के (अपां समीपे नियतः) जल के समीप स्थित होके (सावित्रीम्+अपि+अधीयीत) सावित्री अर्थात गायत्री मन्त्र का उच्चारण अर्थ ज्ञान और उसके अनुसार अपने चाल चलन को करे।

78. सावित्रीं च जपेन्नित्यं पवित्राणि च शक्तितः। सर्वेष्वेव व्रतेष्वेवं प्रायश्चितार्थमादृतः॥ मनु स्मृति ११.२२५

पदार्थः प्रायश्चितकर्ता प्रायश्चितकाल में (नित्यम्) प्रतिदिन (शक्तितः) शक्ति के अनुसार अधिक से अधिक (सावित्रीं च पवित्राणि जपेत्) सावित्री=गायत्री मन्त्र और पवित्र करने की प्रार्थना वाले मन्त्रों का जप करे, (एवम्) ऐसा करना (सर्वेषु+एव व्रतेषु) सभी व्रतों में (प्रायश्चित्तार्थम्+आदृतः) प्रायश्चित्त के लिए उत्तम माना गया है।

79. भूमिरन्तरिक्षं द्यौरित्यष्टावक्षराण्यष्टाक्षरं ह वा एकं गायत्र्यै पदमेतदु हैवास्या एतत्स यावदेषु त्रिषु लोकेषु तावद्धजयति योऽस्या एतदेवं पदं वेद॥ बृहदारण्क्योपनिषद ५.१४.१

पदार्थः (भूमिः अन्तरिक्षं द्यौ) भूमि, अन्तरिक्ष और द्यौ में (इति अष्टौ अक्षराणि) आठ अक्षर हैं। और (ह वै गायत्र्यै एकम् पदम् अष्ट अक्षरम्) गायत्री का एक पद (तत्सवितुर्वरेण्यं) आठ अक्षर वाला है। (उ ह अस्याः एतत् पदम् यः) उस के इस (एक) पद को जो (एवम् वेद) इस प्रकार जानता है, (एषु त्रिषु लोकेषु यावत्) इन तीनों लोकों में जितना है, (सः तावत् ह जयति) उतने को वह जीत लेता है। व्याख्या 'तत् + सवितुः + वरेण्यम्' यह गायत्री मन्त्र का पहला पाद है। इसका अर्थ यह है कि ईश्वर जो जगत् का रचयिता है वही उपासना के लिए ग्रहण करने के योग्य है। उपासक जब इसको जान लेता है और इसके अनुसार आचरण करने लगता है तब वह ऐसा हो जाता है मानो लोक में जो कुछ है वह सब उसने प्राप्त कर लिया क्योंकि सब से अधिक मूल्यवान् वस्तु इस त्रिलोकी की वही है जिसने इसे बनाया है। उसे पाकर तुम्हें फिर और कुछ पाना न शेष रहता है। (२) गायत्री के इस पद और त्रिलोकी (भूमि, अन्तरिक्ष, द्यौ) के शब्दों के आठ आठ अक्षरों की तुलना केवल इसीलिए यहाँ की गई है जिससे दोनों की बाहरी समता भी प्रकट हो जावे।

80. ऋचो यजूंषि सामानीत्यष्टावक्षराण्यष्टाक्षरं ह वा एकं गायत्र्यै पदमेतदु हैवास्या एतत्स यावतीयं त्रयी विद्या तावद्ध जयति योऽस्या एतदेवं पदं वेद॥ बृहदारण्क्योपनिषद ५.१४.२

पदार्थः (ऋचः यजूंषि सामानि) ऋचः (ऋग्वेद) यजूंषि (यजु) सामानि (साम) (इति अष्टौ अक्षराणि) ये आठ अक्षर हैं (ह वै गायत्र्यै एकम् पदम्) निश्चय गायत्री का एक पद, (दूसरा) पद (अष्ट अक्षरम्) (भर्गो देवस्य धीमहि) भी आठ अक्षर वाला है। (अस्याः एतत् उ ह एतत्) इस (गायत्री) का यह (एक पद) इन (तीनों वेद) के बराबर है (यावती इयम् त्रयी विद्या) जितनी ये तीनों विद्याएँ हैं (तावत् ह सः जयति यः अस्याः) वह उतना प्राप्त कर लेता है (एकम् पदम् एवम् वेद) जो इस (गायत्री) के एक पद को इस प्रकार जानता है। व्याख्या गायत्री का दूसरा पाद 'भर्गो देवस्य धीमहि' है। इस पाद का भाव यह है कि ईश्वर पवित्र और प्रकाशयुक्त है। उसे हम अपने हृदय में धारण करें। जिस समय उपासक इसको जानकर सचमुच ईश्वर को अपने हृदय में धारण कर लेता है तब वह मानो इतना ही ज्ञानी है जितना इन तीनों वेदों के पढ़ने से कोई ज्ञानी हुआ करता है क्योंकि तीनों वेदों के ज्ञान की चरम सीमा तो इतनी ही है कि मनुष्य ईश्वर को जानकर उसे प्राप्त कर लेवे। (२) दोनों वाक्यों में आठ आठ अक्षरों का होना केवल बाह्य समता दिखलाने के लिए प्रकाट किया गया है।

81. प्राणोऽपानो व्यान इत्यष्टावक्षराण्यष्टाक्षरं ह वा एकं गायत्र्यै पदमेतदु हैवास्या एतत्स यावदिदं प्राणि तावद्ध जयति योऽस्या एतदेवं पदं वेदाथास्या एतदेव तुरीयं दर्शतं पदं परोरजा य एषतपति यद्वै चतुर्थं तत्तुरीयं दर्शतं पदमिति ददृश इव ह्येष परोरजा इति सर्वमु ह्येवैष रज उपर्युपरि तपत्येवं हैव श्रिया यशसा तपति योऽस्या एतदेवं पदं वेद॥ बृहदारण्क्योपनिषद ५.१४.३

पदार्थः (प्राणः अपानः व्यानः) प्राण, अपान और व्यान (भी) (इति अष्टौ अक्षराणि) आठ अक्षर वाले हैं। (और) (गायत्र्यै एकम्) निश्चय गायत्री के एक (अन्तिम) (पदम् अष्टाक्षरम् ह वै) पद 'धियो यो नः प्रचोदयात्' में (भी) आठ अक्षर हैं, (उ ह अस्याः एतत् एव एतत्) इसलिए इस (गायत्री) का यह (पद) भी (प्राणोऽपानो व्यानः) है (सः यावत् इदं प्राणि) वह जितना यह प्राणि समूह है (तावत् ह जयति) उतना विजित कर लेता है (यः अस्याः एतत् पदम्) जो इस (गायत्री) के इस पद को (एवं वेद) इस प्रकार जान लेता है। (अथ अस्याः एतत् एव तुरीयं) इसका यही तुरीय पद परो (पद परोरजाः यः एषः तपति) रजा है, जो यह चमकता है। (यत् वै चतुर्थम् तत् तुरीयं) जो चौथा पद है निश्चय तुरीय है। (ददृशे इव दर्शतं पदम् इति) प्रत्यक्ष की सी तरह दर्शत पद है। (एषः हि परोरजा इति उ हि) यही परोरजा है, क्योंकि यह (सर्वम् एषः रजः) सब ही (जो दीखता है) रज है। (एषः हि एव उपरि उपरि तपति) और यही (परोरजा जो रजस् लोक लोकान्तरों से परे) है (जो) ऊपर ऊपर प्रकाशित हो रहा है, (यः अस्याः एतत् पदम्) जो इस (गायत्री) के चतुर्थ पद (एवम् वेद) को इस प्रकार जानता है (एवम् ह एव श्रिया यशसा) इसी प्रकार श्री और यश से (तपति) चमकने लगता है।

82. सैषा गायत्र्येतस्मिंस्तुरीये दर्शते पदे परोरजसि प्रतिष्ठिता तद्वै तत्सत्ये प्रतिष्ठितं चक्षुर्वै सत्यं चक्षुर्हि वै सत्यं तस्माद्यदिदानीं द्वौ विवदमानावेयातामहमदर्शमहमश्रौषमिति य एवं ब्रूयादहमदर्शमिति तस्मा एव श्रद्दध्याम तद्वै तत्सत्यं बले प्रतिष्ठितं प्राणो वै बलं तत्प्राणे प्रतिष्ठितं तस्मादाहुर्बलं सत्यादोगीय इत्येवंवेषा गायत्र्यध्यात्मं प्रतिष्ठिता सा हैषा गयांस्तत्रे प्राणा वै गयास्तत्प्राणांस्तत्रे तद्यद्गयांस्तत्रे तस्माद्गायत्री नाम स यामेवामूं सावित्रीमन्वाहैषैव सा स यस्मा अन्वाह तस्य प्राणांस्त्रायते॥ बृहदारण्क्योपनिषद ५.१४.४

पदार्थः (सा एष गायत्री) वह यह गायत्री (एतस्मिन् दर्शते पदे परोरजसि) इस दर्शनीय पद में सब लोकों से (रजसि तुरीये प्रतिष्ठिता) ऊपर तुरीय में प्रतिष्ठित है। (तत् वै सत्ये प्रतिष्ठितं) वह निश्चय सत्य में प्रतिष्ठित है। (चक्षुः वै सत्यम्) निश्चय आँख सत्य है। (चक्षुः हि वै सत्यम्) निःसन्देह आँख ही सत्य है। (तस्मात् यत् इदानीम् द्वौ) इसलिए यदि दो (व्यक्ति) (विवदमानौ एयाताम्) विबाद करते हुए आते हैं (उनमें) (अहम् अदर्शम्) (एक कहता है) मैंने देखा है, (अहम् अश्रौषम् इति) (दूसरा कहता है) मैंने सुना है। (य एवम् ब्रूयात्) जो (उन दोनों में से) कहे कि (अहम् अदर्शम् इति) मैंने देखा है (तस्मै एव श्रद्दध्याम) उसी पर हम श्रद्धा करेंगे। (तत् वै तत् सत्यम् बले) निःसन्देह वह सत्य बल में (प्रतिष्ठितं) प्रतिष्ठित है। (प्राणः वै बलं) निश्चय प्राण बल है (तत् प्राणे प्रतिष्ठितं) इसीलिए कहते हैं कि सत्य से (बलं ओजीयः इति) बल अधिक बली है (एवम् एषा गायत्री) इस प्रकार यह गायत्री (अध्यात्मं प्रतिष्ठिता) अध्यात्म में प्रतिष्ठित है। (सा एषा ह गयान् तत्रे) सो इस (गायत्री) ने गयों की रक्षा की है, (प्राणाः वै गयाः) निश्चय प्राण ही 'गया' है। (तत् प्राणान् तत्रे) प्राणों की इस (गायत्री) ने रक्षा की है (तत् यत् गयान् तत्रे) उस (गायत्री) ने जो प्राणों की रक्षा की है, (तस्माद् गायत्री नाम) इसी से 'गायत्री' नाम है। (सः याम् एव अमूम्) वह (आचार्य) जिस (सावित्रीम् अन्वाह) सावित्री का उस (शिष्य) को उपदेश देता है (एषा एव सा सः यस्मै) यही वह है। वह (आचार्य) जिसको (इस गायत्री का) (अन्वाह) उपदेश देता है, (तस्य प्राणान् त्रायते) उसके प्राण की रक्षा करता है।

83. तां हैतामेके सावित्रीमनुष्टुभमन्वाहुर्वागनुष्टुबेतद्वाचमनुब्रूम इति न तथा कुर्याद्गायत्रीमेव सावित्रीमनुब्रूयाद्यदि ह वा अप्येवंविद्बह्विव प्रतिगृह्णाति न हैव तद्गायत्र्या एकञ्चन पदं प्रति॥ बृहदारण्क्योपनिषद ५.१४.५

पदार्थः (एके ताम् ह एतां) कोई अन्य (आचार्य) इस अनुष्टुप् (सावित्रीं अनुष्टुभम् अनु आहुः) छंद की सावित्री का उपदेश देते हैं (और कारण यह बतलाते हैं) (वाक् अनुष्टुप् एतद् वाचम्) अनुष्टुभ् वाणी है, इस वाणी का (अनुब्रूमः इति) (शिष्य को) उपदेश करते हैं। (उपनिषत्कार कहते हैं कि) (न तथा कूर्यात्) ऐसा न करो, (गायत्रीम् एव सावित्रीम् अनुब्रूयात्) किन्तु गायत्री ही सावित्री है (उसी का) उपदेश करो। (यदि ह वै अपि

एवं विद्) यदि ऐसा (गायत्री का) ज्ञाता (बहु इव प्रति गृहाति) बहुत धन भी दान में लेता है (गायत्र्याः तत् एकंचन) वह गायत्री के एक पद के भी (पदम् प्रति न ह एव) बराबर नहीं।

84. स य इमांस्त्रींल्लोकान्पूर्णान्प्रतिगृह्णीयात्सोऽस्या एतत्प्रथमं पदमाप्नुयादथ यावतीयं त्रयी विद्या यस्तावत्प्रतिगृह्णीयात्सोऽस्या एतद्द्वितीयं पदमाप्नुयादथ यावदिदं प्राणि यस्तावत्प्रतिगृह्णीयात्सोऽस्या एतत्तृतीयं पदमाप्नुयादथास्या एतदेव तुरीयं दर्शतं पदं परोरजा य एष तपति नैव केनचनाप्यं कुत उ एतावत्प्रतिगृह्णीयात्॥ बृहदारण्क्योपनिषद ५.१४.६

पदार्थः (सः यः इमान् त्रीन् लोकान्) सो जो कोई इन तीनों लोकों को (पूर्णान् प्रतिगृह्णीयात्) (जो सर्वविध पूर्ण हो) दान में लेवे (सः अस्याः एतत् प्रथमम्) वह इस (गायत्री) के इस (पदम् आप्नुयात्) पहले पद को प्राप्त करेगा (अथ यावती इयं त्रयी विद्या) और जितनी यह त्रयी विद्या है (यः तावत् प्रति गृह्णीयात्) उतना जो कोई दान में लेवे तो (सः अस्याः एतद् द्वितीयम्) वह इस (गायत्री) के इस दूसरे (पदम् आप्नुयात्) पद को प्राप्त करेगा। (अथ यावत् इदम् प्राणि) और जितना ये प्राणि समूह है (यः तावत् प्रति गृह्णीयात्) जो उतना दान ले लेवे (सः अस्याः एतत् तृतीयं) वह इसके इस तीसरे (पदम् आप्नुयात्) पद को प्राप्त करे। (अथ अस्याः एतत् एव तुरीयं) और इसका यही 'तुरीय' (दर्शतं पदम् पुरोरजा) दर्शनीय पद जो सब से ऊपर (यः एषः तपति) और सर्वत्र प्रकाशित हो रहा है (न एव केनचन आप्यं) किसी से भी प्राप्तव्य नहीं है। (कुतः उ एतावत् प्रतिगृह्णीयात्) कहाँ से वह इतना दान ले?

85. तस्या उपस्थानं गायत्र्यस्येकपदी द्विपदी त्रिपदी चतुष्पद्यपदसि न हि पद्यसे। नमस्ते तुरीयाय दर्शताय पदाय परोरजसेऽसावदो मा प्रापदिति यं द्विष्यादसावस्मै कामो मा समृद्धीति वा न हैवास्मै स कामः समृध्यते यस्मा एवमुपतिष्ठतेऽहमदः प्रापमिति वा॥ बृहदारण्क्योपनिषद ५.१४.७

पदार्थः (तस्याः उपस्थानम्) उस (गायत्री) का (यह) प्रत्यक्ष दर्शन या पास बैठना है साधक कहता है (गायत्री एक पदी, द्विपदी,) हे गायत्री! तू एक पद दो पद (त्रिपदी चतुष्पदी असि) तीन पद और चार पद वाली है। (अपद् असि हि न पद्यसे) (चार पदी होकर भी) तू बिना पद वाली है, (क्योंकि तू जानी नहीं जाती) (नमः ते तुरीयाय दर्शताय) तेरे (चौथे) तुरीय दर्शनीय पद (पदाय परोरजसे) के लिए नमस्कार है, जो सब लोकों से ऊपर है। (प्रार्थना है कि) (असौ अदः मा प्रापद् इति) वह (शत्रु) उस (फल) को न पाये (यम् द्विष्यात्) जिस (दुष्टकर्मा) को ज्ञानी द्वेष करे (असौ अस्मै कामः मा समृद्धि इति) उसकी कामना बढ़ने न पावे (पूरी न हो) (वै न एव ह अस्मै स) निश्चय ही है कि उसकी वह (कामः समृध्यते) कामना पूरी नहीं होती, (यस्मै एवम् उपतिष्ठते) जिसके लिए इस प्रकार उपस्थान किया जाता है (अहम् अदः प्रापम् इति) (प्रार्थना का दूसरा रूप यह है) मैं इस (कामना) को प्राप्त होऊं (मेरी श्रेष्ठ कामना पूर्ण हो)।

86. एतद्ध वै तज्जनको वैदेहो बुडिलमाश्वतराश्विमुवाच यन्नु हो तद्गायत्रीविदब्रूथा अथ कथं हस्तीभूतो वहसीति मुखं ह्यस्याः सम्राण्न विदाञ्चकारेति होवाच तस्या अग्निरेव मुखं यदि ह वा अपि बह्विवाग्नावभ्यादधति सर्वमेव तत्सन्दहत्येवं हैवैवंविद्यद्यपि बह्विव पापं कुरुते सर्वमेव तत्सम्प्साय शुद्धः पूतोऽजरोऽमृतः सम्भवति॥ बृहदारण्क्योपनिषद ५.१४.८

पदार्थः (एतत् ह वै तत्) एक बार विदेहराज जनक ने (जनकः वैदेहः आश्वतराश्विम्) (गायत्री के विषय में) अश्वत राश्व के पुत्र (बुडिलिम् उवाच) बुडिल ने कहा, (यत् नु ह उ तत्) आश्चर्य है कि आप तो अपने को (गायत्रीविद् अब्रूथा) गायत्री का ज्ञाता कहते थे (अथ कथम् हस्तीभूतः) फिर क्यों भारवाही हाथी से (वहसि इति) ढोते हो (दुनिया के चक्कर में पड़े हो) (हि अस्याः मुखम् सम्राट) बुडिल ने कहा क्योंकि हे सम्राट! मैने इस (गायत्री) का मुख (मुख्य उद्देश्य या रहस्य) (न विदांचकार इति) नहीं जाना है। (ह उवाच तस्याः) जनक ने उत्तर दिया कि उस का (अग्निः एव मुखम्) (गायत्री) अग्नि ही मुख है। (यदि ह वै अपि बहु इव) निश्चय यदि कोई बहुत सा (अग्नौ अभ्यदधाति) अग्नि में (ईंधन आदि) डाल देता है (तम् सर्वम् एव स दहति) तो वह सब को जला देती है (एवम् ह एव एवंविद् यद्यपि बहु इव पापं कुरुते) इस प्रकार जानने वाला (गायत्रीविद्) जो भी पाप करता है, (तत् सर्वम् एव संप्साय शुद्धः पूतः अजरः) उस सभी को खाकर (प्रसन्नता से फल भोग कर) शुद्ध, पवित्र (अमृतः सम्भवति।) अजर और अमर हो जाता है।

87. अथैनमाचामति तत्सवितुर्वरेण्यम्। मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः। भूः स्वाहा। भर्गो देवस्य धीमहि। मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवं रजः। मधु द्यौरस्तु नः पिता। भुवः स्वाहा। धियो यो नः प्रचोदयात्। मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमां अस्तु सूर्यः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः। स्वः स्वाहेति। सर्वां च सावित्रीमन्वाह सर्वाश्च मधुमतीरहमेवेदं सर्वं भूयासं भूर्भुवः स्वः स्वाहेत्यन्तत आचम्य पाणी प्रक्षाल्य जघनेनाग्निं प्राक्शिराः संविशति प्रातरादित्यमुपतिष्ठते दिशामेकपुण्डरीकमस्यहं मनुष्याणामेकपुण्डरीकं भूयासमिति यथेतमेत्य जघनेनाग्निमासीनो वंशं जपति॥ बृहदारण्क्योपनिषद ६.३.६

पदार्थः (अथ एनम् आचामति) अब उस (मंथ) को खाता है। (मंथ के ४ ग्रास किये जाते हैं और चार बार में भक्षण किया जाता है। एक एक मंत्र से एक एक ग्रास भक्षण करता है, पहला मन्त्र जिसे पढ़कर पहला ग्रास भक्षण करता है, यह हैः) (तत् सवितुः वरेण्यम्) वह रचयिता (ईश्वर) ग्रहण करने योग्य है। (वाताः मधु ऋतायते) वायु (उसकी कृपा से) मधुवत बह रहे हैं, (सिन्धवः मधु क्षरन्ति) नदियां मधुर पूर्ण होकर प्रवाहित हैं, (नः ओषधी माध्वीः सन्तु) हमारे लिये औषधियाँ (गेहूँ, जौ आदि) मधुर होवें (भूः स्वाहा) भूः स्वाहा अन्त में कहकर पहला ग्रास भक्षण करे॥१

(भर्गः देवस्य धीमहि) पवित्र और प्रकाशमय (परमात्मा को हम) (हृदय में) धारण करें, (नक्तम् मधु उत उषसः) रात्रि और उषा (हमारे लिये) मधु होवें, (पार्थिवम् रजः मधुवत्) पृथिवी का रज (धूलि) मधुमय (उदपयोगी) हो, (नः द्यौः पिता अस्तु) द्युलोक हमारी रक्षक और मधु होवे (भुवः स्वाहा) भुवः स्वाहा अन्त में कह कर दूसरा ग्रास भक्षण कर लेवे॥२

(धियः यः नः प्रचोदयात्) जो हमारी बुद्धियों को (भलाई की ओर) प्रेरित करे (नः वनस्पतिः मधुमान् सूर्यः मधुमान् अस्तु) हमारे लिये वनस्पति मधुर और सूर्य (भी) मधुर होवे, (नः गावः माध्वीः भवन्तु) हमारे लिये गायें मधुर (दुग्ध देने वाली) हों, (स्वः स्वाहा इति) इस तीसरे मन्त्र को बोलकर तीसरा ग्रास भक्षण कर लेवे॥३

(सर्वाम् सावित्रीम् अन्वाह) सम्पूर्ण गायत्री मंत्र पढ़ें (सर्वाः च मधुमतीः) और समस्त मंत्र ('मधुवाताः' से लेकर 'माध्वीर्गावो भवन्तु नः', पर्यंत पढ़कर तब आगे के वाक्य पढ़ें) (अहम् एव इदम् सर्वम् भूयासम्) मैं ही सब कुछ हो जाऊँ (भूर्भुवः स्वः स्वाहा) (यह सब पढ़कर चौथा ग्रास भक्षण कर लेवे) (अन्ततः आचमय पाणी प्रक्षाल्य) अन्त तक (चारों ग्रास) खाकर हाथ धोकर (अग्निम् जघनेन प्राक्शिराः शिवसंति) अग्नि कुण्ड के पीछे पूर्व को शिर करके सो जाता है (प्रातः आदित्यम् उपतिष्ठते) प्रातःकाल (उठ कर) आदित्य (अखण्ड परमात्मा) का उपस्थान (चिन्तन) करता है। उपस्थान करने का मन्त्र यह है (दिशाम् एक पुण्डरीकम् असि) तू समस्त दिशाओं का कमल है (अर्थात् तेरे प्रकाश से समस्त दिशायें कमलवत् खिल जाती हैं) (अहम् मनुष्याणाम् एकपुण्डरीकम् भूयासम् इति) मैं भी मनुष्य के मध्य कमल (वत्) हो जाऊँ, (यथा एतम् एत्य) वैसे ही (जिस मार्ग से अग्नि कुण्ड के पीछे गया था) उसी से लौट कर (अग्निम् जघनेन आसीनः वंशम् जपति) अग्नि के पीछे बैठ कर वंश का (जो आगे बतलाया गया है) जप करता है।

88. ब्रह्म की महत्ता

अहं ब्रह्मास्मि। मैं ब्रह्म हूँ। बृहदारण्यक उपनिषद १.४.१०

तत्त्वमसि। वह ब्रह्म तू है। छान्दोग्य उपनिषद ६.८.७

अयम् आत्मा ब्रह्म। यह आत्मा ब्रह्म है। माण्डूक्य उपनिषद १.२)

प्रज्ञानं ब्रह्म। वह प्रज्ञानं ही ब्रह्म है। ऐतरेय उपनिषद १.२

सर्वं खल्विदं ब्रह्मम्। सब ब्रह्म ही है। छान्दोग्य उपनिषद ३.१४.१

89. तैतरीयोपनिषद १२.१ ॐ शं नो मित्रः शं वरुणः।

ॐ शं नो मित्रः शं वरुणः। शं नो भवत्वर्यमा। शं न इन्द्रो बृहस्पतिः। शं नो विष्णुरुरुक्रमः। नमो ब्रह्मणे। नमस्ते वायो। त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि। ऋतं वदिष्यामि। सत्यं वदिष्यामि। तन्मामवतु। तद्वक्तारमवतु। अवतु माम्। अवतु वक्तारम् ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥ तैतरियोपनिषद १.१.१

पदार्थः मित्रः नः शम् मित्र हमारे लिए कल्याणकारी हो, वरूणः शमः वरूण श्रेष्ठ ईश्वर सुखदायी हो, अर्यमा न्यायकारी ईश्वर नः, शम्, भवतु हमारे लिए सुखकारक हो, इन्द्रः ऐश्वर्यवान् बृहस्पतिः वेदवाणी का अधिपति ईश्वर नः, शम् हमारे लिए सुखकर हो, उरूक्रमः महापराक्रमी विष्णुः व्यापक ईश्वर नः , शम् हमारे लिए सुखदायक हो। नमो, ब्रह्मणे ब्रह्म को नमस्कार हो , नमस्ते, वायो हे सर्वाधार ईश्वर आपको नमस्कार हो। त्वम् एव आप ही प्रत्यक्षं, ब्रह्म प्रत्यक्ष ब्रह्म असि हैं। त्वाम् एव आप ही को प्रत्यक्षं , ब्रह्म प्रत्यक्ष ब्रह्म वदिष्यामि कहूंगा। ऋतं वदिष्यामि दिव्य सत्य कहूंगा। सत्यं, वदिष्यामि सत्य कहूंगा। तन्, माम् अवतु वह ब्रह्म मेरी रक्षा करो। तत्, वक्तारम्, अवतु वह, वक्ता उपदेष्टा आचार्य की रक्षा करे, अवतु माम् रक्षा करे मेरी। अवतु, वक्तारम् तथा रक्षा करे उपदेष्टा आचार्य की।

90. आत्मा और मन का संवाद (आराधना, वैराग्य, योग, साधना, तप)

आत्मा-अरे! मन तू ऐसा क्यों है?

मन-स्वामी आपने ही तो आज्ञा दी थी वस्तु उपस्थित करो, मैंने आपकी आज्ञा का पालन करके उपस्थित कर दी।

आत्मा और मन का संवाद

आत्मा अरे मन तू ऐसा क्यों है।

मन स्वामी तूने ही तो आज्ञा दी थी, प्रकृति के गर्भ से लाओ, मैंने उपस्थित कर दी।

आत्माः भाई मन ! तू तो बड़ा ही दुष्ट है, अत्यन्त चंचल है, प्रबल और ढीठ है। कहीं राज्य का लोभ देकर गुलामी करवाता है, कभी ऐश्वर्य का लालच दिखाकर घास कटवाता है, कहीं धन की ध्वनि सुनाकर धनियों के पैर दबवाता है, किसी की ऋषि-सिद्धि में फाँसकर पानी भरवाता है। ऐसे ही विषय-भोगों में आसक्त करके न मालूम तू कितने जन्मों से कितनी योनियों में मुझे भटका रहा है। जैसे कुत्ते को रोटी का टुकड़ा दिखाते हुए चाहे जितनी दूर ले जाया जाय, तुझसे छुटकारा पाने का कोई उपाय दिखलायी नहीं देता। तू हवा से भी तेज दौड़ता है, क्षण भर में ध्रुव मण्डल तक घूम आता है। जाग्रत में ही नहीं, स्वप्न में भी चुप होकर नहीं बैठता। जन्म भर में कभी देखे सुने नहीं, ऐसे-ऐसे अनोखे पदार्थ रच लेता है। भजन करने को बैठता हूँ तो और भी अधिक भागता है। बहुतेरा रोकता हूँ, रुकता नहीं। मन्त्र में लगाता हूँ तो बिना सिर-पैर के मनोराज्य करने लगता है। भगवान का ध्यान करना चाहता हूँ तो भागा-भागा फिरता है। राम-राम जपता हूँ तो ग्राम-ग्राम में घूमता है। घर-बाहर के, दरबार के सब झगड़े भजन में लाकर खड़े कर देता है। तंग आ गया हूँ, तुझ पापी से कब पीछा छूटेगा? जब देखो तब एक-न-एक चिन्ता में ही डाले रखता है। एक घड़ी भी सुख की नींद नहीं सोने देता। मैं संसार से मुक्त होना चाहता हूँ, तू मुझे लौटा-लौटाकर उसी में डालता है। भूत के समान सदा

मुझ पर सवार रहता है। सत्संग में जाना चाहता हूँ तो गंजीफ़ा, चौसर, शतरंज में लगा देता है। स्वाध्याय करना चाहता हूँ तो उपन्यास सामने लाकर रख देता है। देवस्तुति वाणी पढ़ने बैठता हूँ तो कहता है घर में दाल नहीं है, घी नहीं है, मिर्च-मसाला निपट गया है, जलाने को लकड़ियाँ नहीं हैं; मंडीका समय है, नाज भी निपटने वाला है, चलो, ले आओ, इस समय पाव भर अधिक मिल जायगा; ईश्वर भजन फिर कर लेना, यह तो रोज का गीत है; पेट-पूजा भी तो प्रधान है, सब उसके पीछे हैं; देवी-देवता भी इसीसे प्रसन्न होते हैं। गीता पढ़ने को दिन भर पड़ा है, रात भी बड़ी- बड़ी होती है; मंडी का समय निकला जाता है। ऐसी- ऐसी तेरी बातों से तंग आ गया हूँ। तेरा सत्यानाश हो जाय।

तूने मेरा सर्वस्व नाश कर दिया है। स्वभाव से मैं सुखी हूँ, तेरे संग में दुःख पाता हूँ। पवित्र होकर भी तेरे संग से पापी कहलाता हूँ। अचल भी तेरे संग से चल बन गया हूँ। बृहत् होकर भी तेरे संग से अणु हो गया हूँ। असंग होने पर भी तेरे संग से कर्ता-भोक्ता की उपाधि मेरे सिर मढ़ी गयी है। स्वतन्त्र होकर भी परतन्त्र और मुक्त होकर भी तेरे संग से बन्धनमें पड़ा हूँ। तृप्त होकर भी भूखा बना रहता हूँ। निर्भय होकर भी भयभीत हूँ। नहीं जन्मता हुआ भी जन्मता हूँ, अमर होकर भी मर रहा हूँ। कहाँ तक रोऊँ? तेरे संग से तंग हूँ।

मन आत्मा से: अच्छा! मैं तुझसे ही इन्साफ कराता हूँ, तुझे ही न्यायाधीश बनाता हूँ बोल, जो कुछ मैं कहता हूँ, ठीक है या नहीं?

मन वाह! साहब, वाह! अच्छी उलटी गंगा बहायी।

करना आप, लगाना नौकर को।

ऐसी समझ है, तभी तो आप तंग हो रहे हैं। आपने जितनी बातें कही हैं, सब झूठी हैं। निर्मूल हैं। दूसरे को दोष लगाना बड़ा भारी पाप है। सोच-विचार कर बोलना चाहिये! आप अच्छे, मैं बुरा! बुरेने अच्छेको बिगाड़ दिया, कहीं ऐसा भी हो सकता है? क्या गुरु जी से यही पढ़ा है? रोज तो सुना करते हैं कि बुरा बुरा ही रहेगा, अच्छा अच्छा ही रहेगा। बुरा अच्छा नहीं हो सकता, अच्छा बुरा नहीं हो सकता। जैसे दिन-रात का मेल नहीं होता, ऐसे ही अच्छे-बुरे भी मिल नहीं सकते। सोना खोटा नहीं हो सकता। जैसा कारण होता है, वैसा ही कार्य भी होता है। सजातीयका सजातीयसे ही मेल हो सकता है, विजातीयका नहीं हो सकता। फिर मैंने आपको सुखीसे दुःखी कैसे बना दिया? आप मुझे दुष्ट, चंचल, बलवान् और ढीठ बताते हैं; मैं इनमें से एक भी नहीं हूँ। यदि हूँ तो आपका बनाया हुआ ही हूँ। मैं तो सरल, अबल, लँगड़ा और बेपेंदी का लौटा हूँ। बिना कौड़ी-पैसे का नौकर हूँ, बिना दाम का खरीदा हुआ गुलाम हूँ। वचन में बँधा हुआ हूँ, इशारे पर काम करता हूँ। जो वस्तु आप माँगते हैं, वही लगाकर देता हूँ। जहाँ खड़े होने को कहते हैं, वहीं एक टाँग से खड़ा रहता हूँ! आपकी रुचि के अनुसार काम करता हूँ, आपकी रुचि बिना कोई काम नहीं करता। जब आप कहते हैं, तभी चलता हूँ! आपके दिये हुए पैरोंसे चलता हूँ! नहीं तो मेरे पैर हैं ही नहीं। लँगड़ा हूँ, जड हूँ, बल भी मुझमें नहीं है, यदि है तो आपका दिया हुआ है मैं तो बलहीन हूँ। अबला के पुत्र में बल आवे ही कहाँ से? आपकी बुद्धि विपरीत हो रही है, इसलिये आपको कुछ-का- कुछ दिखायी दे रहा है। ढिठाई कैसे कर सकता हूँ? ढिठाई तो वह करे जिसमें बल हो, बल पेंदी में होता है, मैं बिना पेंदीका हूँ। फिर ढीठता करूँ ही कैसे? पक्षपात न कीजिये, पक्षपात रहित होकर विचारिये। आप स्वभाव से भले ही निर्दोष हों, मैं आपको दोषी नहीं बताता, आप निर्दोष सही परन्तु दोषी मैं भी नहीं हूँ। यदि हूँ तो आप पहले होंगे। कारण से कार्य भिन्न नहीं होता। जैसे आप हैं, वैसा ही मैं भी हूँ। आपमें से ही तो निकला हूँ। फिर दोषी कहाँ? कहीं आसमान में से तो टपक नहीं पड़ा। आपका बनाया हुआ हूँ। आपने ही मुझसे संग किया है। जो-जो भोग आप माँगते हैं, मैं लाकर मौजूद कर देता हूँ! जो-जो योनि आपको पसंद होती है, वहीं मैं आपको ले जाता हूँ। आप कहते हैं कि भजन नहीं करने देता। भजन करना आप चाहते ही कब हैं? धनमें, स्त्रीमें, पुत्रमें, ऐश्वर्यमें, नाममें, कीर्तिमें, ऋद्धि- सिद्धिमें, जुएमें, चोरीमें व्यभिचारमें, मांसमें, मदिरा में, बीड़ी में, चुरुट में, अफ़ीम में, भंगमें, चरस में, गाँजे में, मीठे में, नमकीन में, चटपटे में आपकी रुचि है; इनसे आपको फ़ुरसत ही कहाँ है? दिन-रातमें इन्हींका तो भजन किया करते हैं, फिर ईश्वरका भजन कहाँ से हो? जो खायगा, उसी की डकार आवेगी। फोनोग्राफ में जो राग भरा जायगा, वही निकलेगा। कुंजड़े के यहाँ तो साग-पात ही मिलेगा, जवाहरात तो जौहरी की दूकान पर ही मिलेंगे। जैसी आपकी रुचि होती है, वैसा ही मैं भी बन जाता हूँ। नौकर को क्या उज्र? 'जी हाँ' करना नौकर का काम है। चौबेजीका नौकर हूँ, बैंगनों का नौकर तो हूँ नहीं; चौबेजी बैंगनोंको अच्छा बताते हैं तो मैं उन्हें गुणवाला बना देता हूँ। चौबेजीको बैंगन नापसंद हों तो मैं उन्हें बेगुन कह देता हूँ। 'पाँड़ेजी, तुम्हें ग्राम में रहना; ऊँट बिलैया ले गयी तो हाँ जी हाँ जी कहना!' सुनिये, आपकी राजी में मेरी राजी है। आप स्वाध्याय कीजिये, प्रणिधान कीजिये, आसन लगाइये, प्राणायाम कीजिये। प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि कीजिये। राम नाम का जाप कीजिये; नवधा, प्रेमा, पराभक्ति कीजिये, श्रवण, मन न, निदिध्यासन कीजिये। शंकर की, कृष्ण की, राम की जीवन शैली का ध्यान कीजिये। जो कुछ आप चाहें, प्रेम से कीजिये। आप स्वतन्त्र हैं। मैं आपको रोकनेवाला कौन हूँ? मैं तो कान पकड़ी छेरी हूँ; जिधर लगा देंगे, उधर लग जाऊँगा। जब आप संसार से मुक्त होना चाहें, मुझे घर बैठने की आज्ञा दे देना! नौकर की जड़ जमीन से साढ़े तीन हाथ ऊँची होती है; जहाँ आपने जीभ हिलायी, अलग जा बैठूंगा। परमात्मा करे, आप मुक्त हो जायँ; बड़ी खुशी की बात है। आप मुक्त हो जायँगे तो मैं भी मुक्त हो जाऊँगा। आपके आश्रय ही तो मैं हूँ, आपके साथ मेरी भी मुक्ति हो जायगी। सच पूछो तो मुक्ति तो मेरी ही होगी, आप तो स्वभावसे मुक्त हैं ही।

आत्मा-(एकान्त में जाकर) भाई कहता तो ठीक ही है। जैसे पुरुष की छाया होती है, वैसा ही जीवका मन है। जैसा पुरुष होता है, वैसी ही उसकी छाया होती; जैसा मैं हूँ वैसा ही मेरा मन है। मन तो सचमुच जैसा कहता है, वैसा ही है। मैंने उसे सत्ता दे रखी है, नहीं तो उस बेचारे की सत्ता ही कहाँ है? वह तो सचमुच नौकर ही है; नौकर नहीं, किन्तु औजार है। औजार में अपनी सत्ता तो कुछ होती नहीं, औजार वाला अपनी मर्जी के अनुसार उसको उपयोग में ला सकता है। यही बात मन के सम्बन्धमें है! प्रायः सब कार्य मेरे इच्छानुसार ही करता है, किसी कार्य को यदि मैं ही न कराऊँ तो बात दूसरी है। इससे सिद्ध होता है कि मन मेरा औजार है, जड़ है और मैं स्वतन्त्र कर्ता, चेतन हूँ। मैं मन के अधीन नहीं हूँ, मन मेरे अधीन है।

पाठक! इतना जानने से साधक सुखी हुआ, आयु-पर्यन्त मन से इच्छानुसार कार्य लेता रहा और अन्त में उसको छोड़कर स्वस्वरूपमें स्थित होकर हमेशा के लिये जन्म- मरणरूप संसार से मुक्त होकर वैष्णव-पद को प्राप्त हुआ। अज्ञान से सब दुःख है; मन को मन समझते ही मन न मन करने लगता है, स्वाधीन हो जाता है। मन का स्वरूप न समझने से मन चालीस सेरका हो गया है, जानने पर छटाँक का भी नहीं निकलता। न तोला, न माशा, न रत्ती; फूँकमात्रसे उड़ जाय, इतना हलका हो जाता है! सच पूछो तो फूँकका भी काम नहीं है। न हुआ ही हौआ है! बिना सिर-पैर का भूत है! जहाँ पहचान लिया, भूः स्वाहा हो जाता है, स्वयम्भू ही शेष रह जाता है। यह गुरुमन्त्र है, इसको मत भूलो!।

91. ओ३म् युञ्जानः प्रथमं मनस्तत्त्वाय सविता धियः। अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्याऽअध्याभरत्॥ यजुर्वेद ११.१

सविता देवता, छन्दः विराडार्ष्यनुष्टुप्, स्वरः गान्धारः, ऋषिः प्रजापतिर्ऋषिः।

पदार्थः जो (सविता) ऐश्वर्य को चाहने वाला मनुष्य (तत्त्वाय) उन परमेश्वर आदि पदार्थों के ज्ञान होने के लिये (प्रथमम्) पहिले (मनः) विचारस्वरूप अन्तःकरण की वृत्तियों को और (धियः) धारणा रूप अन्तःकरण की वृत्तियों को (युञ्जानः) योगाभ्यास और भू गर्भ विद्या में युक्त करता हुआ (अग्नेः) पृथिवी आदि में रहने वाली बिजुली के (ज्योतिः) प्रकाश को (निचाय्य) निश्चय करके (पृथिव्याः) भूमि के (अधि) ऊपर (आभरत्) अच्छे प्रकार धारण करे, वह योगी और भूगर्भ-विद्या का जानने वाला होवे॥

92. ओ३म् युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे। स्वर्ग्याय शक्त्या॥ यजुर्वेद ११.२

सविता देवता, छन्दः शङ्कुमती गायत्री, स्वरः षड्जः, ऋषिः प्रजापतिर्ऋषिः।

पदार्थः हे योग और तत्त्वविद्या को जानने की इच्छा करने हारे मनुष्यो! जैसे (वयम्) हम योगी लोग (युक्तेन) योगाभ्यास किये (मन सा) विज्ञान और (शक्त्या) सामर्थ्य से (देवस्य) सब को चिताने तथा (सवितुः) समग्र संसार को उत्पन्न करने हारे ईश्वर के (सवे) जगत् रूप इस ऐश्वर्य में (स्वर्ग्याय) सुख प्राप्ति के लिये प्रकाश को अधिकाई से धारण करें, वैसे तुम लोग भी प्रकाश को धारण करो॥

ओ३म् असुर्या नाम लोकाऽअन्धेन तमसावृताः।ताँस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥ यजुर्वेद ४०.३

पदार्थः जो (लोकाः) देखने वाले लोग (अन्धेन) अन्धकार रूप (तमसा) ज्ञान का आवरण करने हारे अज्ञान से (आवृताः) सब ओर से ढंपे हुए (च) और (ये) जो (के) कोई (आत्महनः) आत्मा के विरुद्ध आचरण करने हारे (जनाः) मनुष्य हैं (ते) वे (असुर्याः) अपने प्राण पोषण में तत्पर अविद्यादि दोष युक्त लोगों के सम्बन्धी उनके पाप कर्म करने वाले (नाम) प्रसिद्ध में होते हैं (ते) वे (प्रेत्य) मरने के पीछे (अपि) और जीते हुए भी (तान्) उन दुःख और अज्ञानरूप अन्धकार से युक्त भोगों को (गच्छन्ति) प्राप्त होते हैं॥

ओ३म् यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवन्तदु सुप्तस्य तथैवैति। दूरङ्गमञ्ज्योतिषाञ्ज्योतिरेकन्तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥ यजुर्वेद ३४.१

मनो देवता, विराट् त्रिष्टुप्, धैवतः।

पदार्थः हे जगदीश्वर वा राजन्! आपकी कृपा से (यत्) जो (दैवम्) आत्मा में रहने वा जीवात्मा का साधन (दूरङ्गमम्) दूर जाने, मनुष्य को दूर तक ले जाने वा अनेक पदार्थों का ग्रहण करने वाला (ज्योतिषाम्) शब्द आदि विषयों के प्रकाशन श्रोत्र आदि इन्द्रियों को (ज्योतिः) प्रवृत्त करने हारा (एकम्) एक (जाग्रतः) जागृत अवस्था में (दूरम्) दूर-दूर (उत्, ऐति) भागता है (उ) और (तत्) जो (सुप्तस्य) सोते हुए का (तथा, एव) उसी प्रकार (एति) भीतर अन्तःकरण में जाता है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) सङ्कल्प-विकल्पात्मक मन (शिवसङ्कल्पम्) कल्याणकारी धर्म विषयक इच्छावाला (अस्तु) हो॥

ओ३म् परोऽपेहि मन स्पाप किमशस्तानि शंससि। परेहि न त्वा कामये वृक्षां वनानि सं चर गृहेषु गोषु मे मनः॥ अथर्ववेद ६.४५.१

पदार्थः (मन स्पाप) हे मानसिक पाप! (परः) दूर (अप इहि) हट जा (किम्) क्या (अशस्तानि) बुरी बातें (शंससि) तू बताता है। (परा इहि) दूर चला जा, (त्वा) तुझको (न कामये) मैं नहीं चाहता, (वृक्षान्) वृक्षों और (वनानि) वनों में (सम् चर) फिरता रह, (गृहेषु) घरों में और (गोषु) गौ आदि पशुओं में (मे) मेरा (मनः) मन है॥

ओ३म् आपो यं वः प्रथमं देवयन्त इन्द्रपानमूर्मिमकृण्वतेळः। तं वो वयं शुचिमरिप्रमद्य घृतप्रुषं मधुमन्तं वनेम॥ ऋग्वेद ७.४७.१

लिङ्गोक्ताः, निचृज्जगती, निषादः।

पदार्थः (आपो) उत्तम जल (यम्) जिस को (प्रथमं) पहले (देवयन्त) उत्तम कामना करनेवाले जन (इन्द्रपानम्) पान द्वारा इंद्र के देवत्व गुणों को धारण करने योग्य मनुष्य जन उस को (ऊर्मिम्) तरंग के समन उस उत्तम जल को (इळः) वाणी द्वारा (अकृण्वत) सिद्ध करें अभिमंत्रित करें. उस (शुचिम्) पवित्र (अरिप्रम्) निष्पाप निर्दोष (घृतप्रुषम् मधुमान्तम्) दुग्ध मधु आदि से पूरित (अद्य) आज (वनेम) विशेष रूप से सेवन करें।

93. आत्मा का कोई लिंग नही होता।

नैव स्त्री न पुमानेष न चैवायं नपुंसकः। यद्यच्छरीरमादत्ते तेने तेने स युज्यते।। श्वेता श्वेतरोपनिषद ५.१०
पदार्थः पदार्थः एषः यह जीवात्मा न न एव ही स्त्री स्त्री लिंगी है और न न पुमान् पुरूष लिंगी च और न न एव ही अयम् यह नपुंसकः नपुंसक लिंगी है। यद्यत् - यत् + यत् जिस जिस शरीरम् शरीर को यह आदत्ते ग्रहण करता है तेन - तेन उस उसके साथ सः वह रक्ष्यते रखा जाता है अर्थात् युक्त हो जाता है।
व्याख्याः शृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज
बेटा! यह आत्मा का कोई लिंग नही होता। यह तो एक रस रहने वाला है।
इदन्नमम-यह तेरा कुछ भी नही है। यह सब प्रभु का है।

94. आत्मा का स्थान अङ्गुष्ठान मात्र

व्याख्याः शृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज
आदित्य और दधीचि ने ऐसा कहा है कि यह जो आत्मा है। एक समय आदित्य जी ने अङ्गिरा जी ने कहा है कि महाराज! आत्मा का स्वरूप क्या है मैं आत्मा के स्वरूप को जानना चाहता हूँ कि आत्मा कितना सूक्ष्म है। जब ऐसा कहा तो आदित्य जी वायु जी के समीप पहुंचे और वायु जी से कहा कि तुम आत्मा को कितना परमाणु स्वीकार करते हो। अङ्गुष्ठ मात्र सर्वथा स्वीकार करते हो अथवा नहीं। उन दोनों महापुरूषों के विचारों का मन्थन हुआ और मन्थन होते हुए इस विषय पर विचार विनिमय करते हुए एक मास लग गया और जब कोई भी निर्णय न हो सका, आदित्य महाराज ने कहा कि मेरे विचार में तो यह आता है कि आत्मा ऐसा सूक्ष्म है कि जिसको हम नेत्रों से दृष्टिगत नहीं कर पाते। संसार में कितना ही भौतिक वेत्ता सूक्ष्म परमाणुओं को दृष्टिपात करने वाले यन्त्रों का निर्माण करता रहे। परन्तु जब से सृष्टि प्रारम्भ हुई आज तक कोई ऐसा यन्त्र नहीं बना है जिससे आत्मा को दृष्टिगत कर सके। वह इतना सूक्ष्म है। परन्तु कितना सूक्ष्म? ऋषि ने ऐसा कहा कि मानो हमारा जो एक केश होता है उसका अगला गोल भाग लिया जाए, उस गोल भाग के सात विभाग किए जाएं और वह जो सातवां विभाग है उसके ९९ भाग किए जाएं तो कितना सूक्ष्म वह भाग होता उतना सूक्ष्म आत्मा हमारे इस शरीर में स्वीकार किया जाता है। परन्तु उसको योगी ही दृष्टिपात करते हैं।
परिणाम क्या? मेरे पुत्रों! मैं विशेषता में तुम्हें ले जाना नहीं चाहता हूँ, यह तो वन है परन्तु ऋषियों ने प्राण क्रिया से मन से सूक्ष्म तन्तुओं को जानते हुए मेघावी बुद्धि को जाना, मेघावी को जानकर प्रज्ञा में चले गए और प्रज्ञा में जा करके उसका सन्म्बन्ध नाभि से होता है और नाभि के केन्द्र से होता है। वहाँ सर्व संस्कार उद्बुद्ध हो जाते हैं। परिणाम क्या? लाखों वर्षों के संस्कार मानव के समीप आ जाते हैं, मानव के सामने नृत्य करने लगते हैं जैसे अवृताम् एक खिलवाड़ करता रहता है इसी प्रकार के समीप आ करके नाना प्रकार के जन्मों के संस्कार मानव के द्वारा खिलवाड़ करने लगते हैं अथवा नृत्य करने लगते हैं, नृत्य में अपनी आभा को ले करके विद्यमान हो जाता है।
परिणाम क्या? नाभि केन्द्र को जानने प्रयास करो। नाभि केन्द्र से ही प्राण रूपी इस आभा को ले करके वे तंरगें हृदय स्थली को चलती हैं। वह जो हृदय है, बाह्य जगत है, बाह्य जगत जैसे परमात्मा का हृदय है इसी प्रकार आन्तरिक जगत में यह आत्मा का हृदय है, अन्तरात्मा का हृदय है जिस हृदय में नाना प्रकार की किरणें चलती है, नाना प्रकार की आभाएं चलती हैं और यदि हृदय की क्रिया शान्त हो जाती है तो मानव कहता है कि यह तो मृतक हो गया है। मृतक हो गया है।
वह जो हृदय है उस हृदय में अङ्गुष्ठान (अङ्गुष्ठ मात्र) एक स्थली है उस स्थली में एक अवृत्य धेनु है, उस धेनु के आंगन में अन्तरात्मा का वास है। वह अन्तरात्मा आभ्याम् गति को प्राप्त होने लगता है। वह जो आत्मा में परणित होने वाला एक आभ्याम् नाभिः हृदय कृताम् देवत्त्यम् को प्राप्त होने वाला है। वह नाभि और हृदय की आभा कही जाती है।
आत्मा अङ्गुष्ठमात्रः स्थान में।
अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये संनिविष्टः। तं स्वाच्छरीरात्प्रवृहेन्मुञ्जादिवेषीकां धैर्येण। तं विद्याच्छुक्रममृतं तं विद्याच्छुक्रममृतमिति।। कठोपनिषद २.६.१७
पदार्थः जो (अङ् गुष्ठमात्रः) अङ् गुष्ठमात्र स्थान में रहने वाला (पुरुषः) शरीर रूपी नगरी में स्थित (अन्तरात्मा) जीवात्मा (जनानाम्) प्राणियों के (हृदये) हृदय में (सदा, सन्निविष्टः) सदा स्थित रहता है १. यहां जीवात्मा का शरीर में हृदय में स्थान बताया है। और हृदय शब्द को स्पष्ट करते हुए महर्षि दयानन्द लिखते हैं—"कण्ठ के नीचे दोनों स्तनों के बीच में और उदर के ऊपर जो हृदय देश है, जिसको ब्रह्मपुर अर्थात् परमेश्वर का नगर कहते हैं। परमेश्वर उसी प्रकाशित स्थान के बीच में खोज करने से मिल जाता है। (ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका उपासना खण्ड) (तम्) उस जीवात्मा को (मुञ्जाद् इव) जैसे मूञ्ज से (इषीकाम्) सींक को (धैर्येण) प्रमाद-रहित होकर सावधानी से (प्रवृहेत्) पृथक् किया जाता है, वैसे प्रयाण काल में (स्वात्, शरीरात् प्रवृहेत्) अपने इस भौतिक शरीर से धैर्य=विवेकी होकर पृथक् करे। और (तम्) उस जीवात्मा को (शुक्रम्) शुद्ध=रागद्वेषादि दोषों से रहित (अमृतम्) शरीरादि की भांति न मरने वाला शाश्वत (विद्यात्) जानना चाहिए। मूलपाठ के अन्त में द्विरुक्ति उपनिषद् की समाप्ति को बताने के लिए है।
पदार्थः अंगुष्ट मात्र पुरुष अन्तरात्मा में है वह वह जनों के हृदयों में रहता है उसको अपने शरीर से धैर्य से निकालें देखे,। जैसे मुञ्ज तृ अन्दर की तार निकाली जाती है। इसको बल और अमृत जाने यही चमकता हुआ अमृत है।
अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो ज्योतिरिवाधूमकः। ईशानो भूतभव्यस्य स एवाद्य स उ श्वः। एतद्वै तत्।। कठोपनिषद २.४.१३
पदार्थः (अङ् गुष्ठमात्रः) वही अंगूठाभर हृदय देश में प्राप्त होने वाला (पुरुषः) ब्रह्माण्ड, हृदय देश और जीवात्मा में भी व्यापक परमात्मा (भूत-भव्यस्य) भूतकालीन और भविष्यत्कालीन सभी पदार्थों का (ईशानः) स्वामी है और वह (अधूमकः) धूम-रहित होने से स्वच्छ (ज्योतिः इव) ज्योति के समान निर्भ्रान्त ज्ञान-प्रकाशस्वरूप है। (स, एव) वह ही (अद्य) आज जैसा है (सः, उ, श्वः) वह निश्चय से वैसा ही कल रहेगा (एतत्) यह (वै) निश्चय से (तत्) वह ब्रह्मतत्त्व है, जिसे हे नचिकेता तुम जानना चाहते हो।
पदार्थः भूत भविष्य का स्वामी अंगुष्ठमात्र पुरुष धूमरहित ज्योति के समान है, वह जैसा आज है वैसा वही कल भी रहेगा। यही वह है।

95. आत्मा का सेवक मन-१

व्याख्याः शृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज
जब मत्यु नहीं होती है, वहाँ मृत्यु का भय क्यों होने लगा। मेरे पुत्रों! हमें प्रभु के राष्ट्र पर विचार विनिमय करना है। यह संसार तो परम्परा से ही सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण से ही बंधा हुआ नृत्य कर रहा। परन्तु आज से नहीं, परम्परा से ही संसार में कहीं देवासुर संग्राम हो रहा है, कहीं एक राष्ट्र दूसरे को नष्ट कर रहा है। कहीं भौतिक विज्ञान विशेष बलवती हो गया, तो वह विनाश को प्राप्त हो गया। परन्तु वही विज्ञान जब आध्यात्मिकवाद में परिणित हो गया तो प्रकाश में चला गया। विज्ञान का सदुपयोग उससे हो गया।
परन्तु विचारना यह है कि हमें अपने कार्य में कितना व्यस्त रहना है। मानव को इस अपने मनीराम को सान्तवना नही देनी है। यह जब सान्तवना को प्राप्त होता है तब ही यह मानव की मृत्यु ले आता है, मानव की वहीं मृत्यु हो जाती है।
एक वाक्य मुझे स्मरण आ गया, पुत्रो! जो मैंने बहुत पुरातन काल में भी प्रकट किया था। एक समय राजा के यहां एक सेवक पहुंचा। राजा ने कहा, अरे तुम कौन हो? महाराज, मैं सेवक हूँ। क्या तुम सेवा करना चाहते हो? उसने कहा कि महाराज! मैं सेवा करने के लिए ही आया हूँ। राजा ने पूछा क्या वेतन लोगे? उसने कहा, मैं कोई वेतन नहीं लूंगा। मेरी एक प्रतिज्ञा है, वह आपको पूर्ण करनी होगी। राजा ने कहा क्या प्रतिज्ञा है? सेवक ने कहा कि जिस समय मुझे कार्य प्राप्त नहीं होगा, उसी समय मैं आपको मृत्यु को प्राप्त करा दूंगा। उन्होंने कहा ये तो बहुत प्रिय है। राजा ने स्वीकार कर लिया। अब बेटा! राजा कार्य उच्चारण करता और उनका कार्य होने लगा। अब कुछ ही समय में राजा के यहाँ, कार्य देने के लिए सूक्ष्मता गई।
राजा का स्वास्थ्य बड़ा प्रिय था। अब मृत्यु के भय से मुनिवरों! देखो! वह भयभीत रहने लगा। वह स्वस्थ भी नहीं रहा। उस सेवक से भयभीत था। मृत्यु नहीं चाहता था, राजा। उस समय कोई बुद्धिमान पुरूष राजा को प्राप्त हुआ। उसने कहा, अरे राजन्! तुम्हारा स्वास्थ्य तो बड़ा प्रिय था। तुम कैसे बन गए हो? राजा ने सब गाथा, उस बुद्धिमान से वर्णन की, जो योगेश्वर थे। राजा ने कहा कि महाराज! मैं मृत्यु से कैसे बच सकूँगा? उन्होंने कहा तुम उस सेवक को अपने व्यक्तिगत कार्यों में क्यों लगा रहे हो? उसे संसार के कार्य में परिणित कर दो।
मेरे प्यारे! देखों संसार का क्या कार्य है? "कर्म ब्रह्मे कृताम्" संसार का भी कार्य नहीं है, तुम्हें तो इतना ज्ञान है, तो देखो, एक दण्ड पृथ्वी में स्थापित करो और उससे कहो कि इस पर ऊर्ध्वा में, ध्रुवा में, ध्रुवा में, ऊर्ध्वा में जाओ। राजा ने वाक्य स्वीकार कर लिया और उसने अपनी राज्य स्थली पर एक दण्ड पृथ्वी में स्थापित कर दिया और मुनिवरो! सेवक से कहा, सेवक तुम इस पर आओ जाओ, ग मन करते रहो। मेरे प्यारे! उन्होंने कहा, अच्छा भगवन्। तो सेवक उस पर ग मन करने लगा और फिर उससे छुटकारा कहाँ? सेवक को लगातार कार्य प्राप्त होता था। मेरे प्यारे! राजा अपनी मृत्यु से बच गया, उसने अपनी मृत्यु नहीं होने दी।
मेरे प्यारे! वह सेवक, राजा और बुद्धिमान कौन हैं? इसके ऊपर विचार किया जाए। बेटा! राजा तो यह शरीर है जिसमें आत्मा विराजमान है और बुद्धिमान इसमें बुद्धि है, ज्ञान है, परन्तु यह जो मन रूपी सेवक ऐसा विचित्र है। दण्ड क्या है, तो उससे कहा कि तुम यह जो प्राण रूपी दण्ड है, इस प्राण रूपी दण्ड पर ग मन करते रहो।
मेरे प्यारे! मन और प्राण का मिलान ही मुक्ति कहलाती है, मन और प्राण के मेल को योग कहते हैं। मन और प्राण के मिलान को ही सृष्टि चक्र को जानना कहते हैं। मन और प्राण की आभा को जानना ही संसार में पितर बनना है।
बेटा! एक सूत्र है और उस सूत्र में यह मन रूपी सेवक कटिबद्ध हो जाता है, एकाग्र बुद्धि होने पर मानव बुद्धिमान क्या योगेश्वर बन जाता है, वह विवेकी बन जाता है। उसे क्रोध अन्नहेः और भी नाना प्रकार की मात्रा नही आती।
जो मानव इस संसार में अपना कल्याण करना चाहता है, अपनी मानवीयता को महान बनाना चाहता है, वह मन रूपी सेवक को प्राण स्थली पर ओतप्रोत करा देता है। हमारे यहां आध्यात्मिक विज्ञानवेता, यहां इस भौतिक विज्ञान के मार्ग को ही जान करके आध्यात्मिकवाद में प्रवेश करता है। यह मन का जानना। प्राणों को जानना, यह मुनिवरों, देखो, भौतिकवाद है। पंच महाभूत इसी से कटिबद्ध है। मानव इसे जानकर ही

आध्यात्मिक वाद में प्रवेश है।
आज का संसार मन की रश्मियों को जानने में ही लगा है। मन की तरंगों में तरंगित होता रहता है। उसी को अपना प्रकाशवत स्वीकार कर लेता है। मन प्रकृति का सबसे सूक्ष्म तन्तु कहलाया गया है, जो बहुत गतिमान है। इस मन को जानने वाला प्रकृति से एक-एक कण को जान लेता है। इसके ऊपर जब योगी का आत्मा बैठ जाता है, तो उस समय यह सर्वत्र ब्रह्माण्ड का दर्शन करा देता है, और मन को स्वतन्त्र छोड़ने पर कहीं का कहीं रमण करता है। कभी समुद्रों की तरंगों में रमण करता है, तो कभी सूर्य की आभा में लोक-लोकान्तरों में, जहां गति करता है, वहीं निकृष्ट से निकृष्ट गति भी करने लगता है। इस मन पर नियंत्रण से यह मोक्ष की पगडण्डी को धारण कर लेता है। प्रवृत्तियों पर जब संयम हो जाता है, तो यह मन आत्मलोक में चला जाता है।
मन वायु से भी तीव्र गति वाला है। इस मन को संसार के शुभ कार्य में लगा दो, यह मन तुम्हे इन्द्रलोक तक पहुंचा देगा। इस मन को स्थिर करो। यह तुम्हें बहुत ऊंचा पहुंचा देगा। (790308)
बेटा! यह आत्मा, मन को आज्ञा देता है कि प्रकृति के गर्भ से कुछ लाकर उपस्थित करो।-पूज्यपाद गुरुदेव।

96. आत्मा का सेवक मन-२

व्याख्या: शृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

एक द्रव्यपति थे, उनके द्वार एक सेवक जा पहुँचा, और उनसे कहा कि मैं आपकी कुछ सेवा करना चाहता हूँ। द्रव्यपति ने कहा क्या, वेतन लोगे? उस सेवक ने कहा, महाराज! मैं वेतन कुछ नही लूंगा परन्तु मेरा एक नियम है, कि जब मुझे कार्य करने को नहीं मिलेगा, तो तब ही मैं आपको मृत्यु प्राप्त करा दूंगा। द्रव्यपति ने कहा कि अच्छा, तुम मेरे द्वारा कार्य करो। वह सेवक द्रव्यपति के द्वारा कार्य करने लगा। द्रव्यपति जो उच्चारण करता, सेवक उस कार्य को कर देता। कुछ समय के पश्चात्, उस द्रव्यपति को कोई कार्य उस सेवक को देने को न रहा। द्रव्यपति बहुत चिंतित होने लगा। एक समय मार्ग में भ्रमण कर रहे थे, वहाँ एक बुद्धिमान मिला और उसने द्रव्यपति से कहा कि आप तो बड़े थकित होते चले जा रहे हैं। तब उन्होंने सब वार्ता कह सुनाई कि मेरे द्वार पर एक सेवक आया हुआ है। उसने मुझसे वचन लिया हुआ है कि जब उसे कोई कार्य करने को न रहेगा तो वह मुझे मृत्यु को पहुँचा देगा। अब मेरे पास उसको कार्य देने के लिए नहीं रहा है, इसलिए मैं उसके भुजों से नहीं बचूंगा। उस समय बुद्धिमान ने कहा कि भाई! तुम उसको अपने कार्य में क्यों लगा रहे हो, संसार के कार्य में लगा दो। उसको छुटकारा नहीं मिलेगा, और तुम उसके भुजों से बच जाओगे। बुद्धिमान की वार्ता सुनकर द्रव्यपति गृह आया और आकर उसको संसार में शुभ कार्य बता दिया कि जाओ, तुम संसार का कार्य करो, तुम्हें छुटकारा नहीं मिलेगा। वह संसार के शुभ कार्य करने लगा, उसको छुटकारा नहीं मिला और द्रव्यपति उसके भुजों से बच गया। यही दशा मनुष्य के मन की है। यदि मन को संसार के शुभ कार्यों में और परमात्मा के चिन्तन में लगाए रखते हैं, तो तब तक यह यथार्थ रहता है और जब इसको छुटकारा मिला, सङ्कल्प विकल्प आए, तो मनुष्य मृत्यु का सामना करने लगता है।मन को शुद्ध बनाओ
पूज्यपाद गुरुदेवः कल महानन्द जी ने प्रश्न किया कि हमारे, आपके वाक्य मृत मण्डल में क्यों जाते हैं? यह क्या दशा है जो इस प्रकार आपत्ति काल भोगना पड़ा है? परन्तु आज भी हम इसका उत्तर न दे सके और व्याख्यान देते देते बहुत दूर चले गए। हम उच्चारण कर रहे थे, कि मानव को अपने कार्यों में दृढ़ रहना चाहिए। जो मानव जैसा करता है, वैसा ही भोगता है। बहुत पूर्व काल में हमने जो कर्म किए हैं, आज उन्हीं का फल भोगना पड़ रहा है। इसमें कुछ भी असत्य और न इसमें कोई भ्रान्ति है।
पूज्य महानन्द जीः आपके व्याख्यान तो यथार्थ होते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं। परन्तु भगवन्! आधुनिक काल में ऐसे व्यक्ति हैं, जो नाना प्रकार की विद्याओं को अच्छी प्रकार जानते नहीं और न वेदों का स्वाध्याय ही करते हैं। उनके हृदय में नाना प्रकार की भ्रान्तियाँ, नाना प्रकार की अशुद्धियाँ रहती हैं इसलिए उनका निर्णय करना आपका कर्तव्य है।
पूज्यपाद गुरुदेव: महानन्द जी! जिसके द्वारा यथार्थता न हो, जो यथार्थ कार्यों को भी यथार्थ न मान रहा हो, बेटा! वह मानव कदापि नहीं मानेगा। वह तो अन्धकार में पहुँचा हुआ है।
आज हमारे हृदय में वह कौन सा स्थान है, जहाँ परमात्मा यह न्याय कर रहा है? आज हम विचारते हैं और यह उच्चारण करते हैं कि कोई स्थान नहीं, वह तो न्याय है। द्वितीय प्रश्न आता है कि जब कोई स्थान नहीं, तो परमात्मा न्याय कैसे करता है। आज यह एक बड़ा दार्शनिक विषय बन जाता है। आज मानव को विचारना चाहिए कि वह परमात्मा विभु है, तो वह कौन सा विभु है, जहाँ हमारे पाप पुण्य, कर्मों का फल दे रहा है? आज हमें वेदों के अनुकूल प्रतीत होता है कि वह परमात्मा हमारी आत्मा के समक्ष बैठा हुआ है। जो भी मानव कर्म करता है, उसके संस्कार, उसके अन्तःकरण में नियुक्त हो जाते हैं। जब मानव तुच्छ कर्म करने के लिए चलता है तो उस समय मानव को संकेत मिलता है, कि अरे, मानव! यह कुमार्ग है, इस पर न जा। मानव उस कर्म को कर लेता है, तो बेटा! वही कर्म परमात्मा उसके अन्तःकरण में नियुक्त कर देता है। जो बेटा! हमने किया है वह अन्तःकरण में विराजमान हो गया है, और वह हमें भोगना अनिवार्य है। उसको भोगे बिना हमारा कार्य न चलेगा।
महानन्द जी ने आज हमें एक संकेत किया है, और कई स्थानों में कहा है कि बहुत से मानव ऐसे हैं, जिन्होंने तपस्या करके तुच्छ कर्मों को समाप्त कर दिया है। परन्तु यह नहीं, यह वाक्य तुम्हारा विचित्र है। यह भी देखो, मानने वाला वाक्य बन जाता है। जैसा मानव ने कर्म किया है, उन्हें भोग करके, उसका अन्तःकरण शुद्ध बनेगा। जैसे आज प्रकाश हो रहा है, परन्तु वह प्रकाश उस काल तक रहेगा, जब तक उसमें प्रकाश देने वाले पदार्थ हैं। दीपक जल रहा है, परन्तु उसी स्थान तक प्रकाश देता रहेगा, जब तक उसमें वह पदार्थ है। जब वह पदार्थ न होंगे, तो वह अपना प्रकाश देना समाप्त कर देगा। इसी प्रकार बेटा! हमारा अन्तःकरण है। जब तक अन्तःकरण में संस्कार हैं जब तक हम भोगते रहेंगे।
आज परमात्मा से जिज्ञासु कहता है कि हे परमात्मन्! मेरा हृदय प्रकाश दे रहा है, अब मैं इसमें कोई पदार्थ नियुक्त नहीं करूंगा, जिससे यह प्रकाश देता है। तो मुनिवरों! तब तक उस अन्तःकरण रूपी महान दीपक में कोई पदार्थ नहीं पड़ेगा, तो प्रकाश कदापि नही देगा भोगना भी नही पड़ेगा, जब इसमें नियुक्त करता है, तो भोगना भी अनिवार्य है। यह कैसा सुन्दर वाक्य हमारे समक्ष आ पहुँचा है। महानन्द जी ने हमसे एक स्थान में प्रश्न किया, कि सृष्टि के प्रारम्भ में मानव की आकृति ऐसी थी, जैसे भालू की।
मुनिवरों! आज का वेदमन्त्र तो यह कह रहा था, कि जब महान सृष्टि प्रारम्भ होती है, तो उस समय जो विमुक्त आत्माएं होती हैं, जिन्हें पूर्वकाल का ज्ञान रहता है, वह आत्मा आ करके परमात्मा के नियमों के अनुकूल अपने महान शरीर को धारण कर लेती है। उनसे यह महान संसार बन जाता है। संसार की गति इस प्रकार की हो जाती है। यह व्याख्या हम अधिक न देंगे। यह विषय तो हमारा कल का है, अब तो हमारा यह वाक्य चल रहा था, कि मानव जैसा कर्म करता है, वैसा उसे भोगना अनिवार्य है। अन्तःकरण में उसके संस्कार नियुक्त रहते हैं परन्तु प्रतीत नहीं कि मानव का अन्तःकरण किस काल में जाग जाए, किस काल में समाप्त हो जाए। आज मानव को विचारना चाहिए कि हमने जो कर्म किया है, वह हमें भोगना अनिवार्य हैं इसलिए हमें शुभ कर्म करना चाहिए। जैसे बेटा! याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने राजा जनक से कहा था, हे जनक! यह मन तो शान्त रहता ही नहीं, यह तो कार्य करता ही रहता है, इसलिए तुम मन को शुद्ध बनाओ। जिससे तुम्हारा जीवन महत्वदायक बन जाएगा। (620309)

97. मन के शोधन के लिए तप-१

व्याख्या: शृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

महर्षि याज्ञवल्क्य ने विचारा मैं वन में तो आ गया हूँ, मुझे तपस्या करनी है। महानता में परणित होना है और मुझे कैसे तपस्वी बनना है। विचार के लिए संसार में मन की आवश्यकता है। मन को पवित्र बनाने के लिए मन का शोधन किया। शोधन क्या होता है? मन को शोधन करने के लिए अन्न की आवश्यकता होती है। उन्होंने विचारा कि मुझे कौन से अन्न को पान करना है। ऋषि ने विचार जिस भूमि में से कृषक अपने गृह को अन्न ले जाते हैं और वह अन्न जो भूमि में पड़ा हुआ बच जाता है उस अन्न को मुझे चुनना है, उसी का आहार करना है, उसी से मेरा मन वास्तव में सुन्दर बन जाएगा। ऋषि ने सङ्कल्प धारण कर लिया और उस अन्न को चुनना आरम्भ कर दिया जिसको सिला अन्न कहते हैं उसी का पान करने से उनका मन अच्छी प्रकार शोधन हो गया। याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने इसी प्रकार बारह वर्ष की तपस्या की। उस अन्न को पान किया, इन्द्रियों को संयम में किया। बारह वर्ष के पश्चात उन्होंने एक पोथी का निर्माण किया जिस पोथी का नाम शतपथ ब्राह्मण कहा जाता है। (890803)

98. मन के शोधन के लिए तप-२

व्याख्या: शृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

वेद का आचार्य कहता है। हे ब्रह्मचारियों! वेद का मन्त्र कहता है कि मानव को तपना चाहिए और तपने के पश्चात ही मानो देखो, वह अभ्योदय हो जाता है। जैसे यह संसार का प्रत्येक परमाणु तप रहा है और तपने के पश्चात ही मानो देखो, उसमें नाना प्रकार की वृत्तियो का जन्म हो जाता है और वही मुनिवरों! वही मुनिवरों! देखो, तपोमय कहलाता है। राजा के राष्ट्र में तपा हुआ, जब राजा होता है। तो मुनिवरों! देखो, प्रजा तपों में बन जाती है। यदि राजा तपता नहीं है ब्रह्मज्ञानी नही है। तो मानो देखो, उस राजा की प्रजा बिखर जाती है और वह मुनिवरों! देखो, राष्ट्रीयतव में आने में अधूरापन अपने में वह स्वीकार करने लगता है। इसीलिए वेद का मन्त्र कहता है। तपं हिरण्यं राजन्मं ब्रह्मे तपाः वेद का मन्त्र कहता है। हे राजन! तू तपस्वी बन और तप मानो देखो, तपों में जब जीवन बन जाता है। तो मुनिवरों! देखो, राष्ट्र पवित्र बन जाता है। महान बन जाता है। विद्यालयों में जब आचार्य तपें हुए होते है। तो ब्रह्मचारी मानो देखो, तपोमय बन जाता है। विद्यालय के पवित्र होते ही, राष्ट्र और समाज पवित्र बन जाते है और मुनिवरों! देखो, इसीलिए वेदमन्त्र कहता है। तपं तपा ममं ब्रह्मणे मात्राणि गच्छतं तपा वेद का ऋषि कहता है कि माता को अपने गृह आश्रम में तपना चाहिए क्योंकि पितर को तपना चाहिए यदि वह तपते है। तो ब्रह्मचारी उसके अनुकूल अपने जीवन को बनाने का प्रयास करते है।
तो आओ मेरे पुत्रों! देखो, वेदमन्त्र कहता है। तपं तपां हिरण्यं तपं ब्रह्मणा कृतं मेरे प्यारे! देखो, मानो यहाँ संसार का प्रत्येक प्राणी मात्र तप रहा है। लोक लोकान्तर तप रहे है। बेटा! सूर्य प्रातः काल में उदय होता है और वह प्रकाश में तप रहा है और तपने के पश्चात मुनिवरों! देखो, तपो में बन करके, वह तपो में ही संसार की तपाता रहता है। नाना प्रकार की ऊर्ज्वा देता है। चन्द्रमा अमृत देता है। वह मानो देखो, तपायमान करता रहता है। इसीलिए हमें प्रत्येक मानव को तपों में ही रमण करना चाहिए। मेरे प्यारे! देखो, महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ब्रह्मचारियों को तप की महिमा का वर्णन कर रहे थे जब न्यौदा में उनका उपदेश सम्पन्न हुआ तो महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज बोले कि ब्रह्मचारियों मेरी इच्छा ऐसी है कि मैं तप करने जा रहा हूँ। क्योंकि प्रत्येक मानव को तपना चाहिए। मेरे प्यारे! ब्रह्मचारियों ने आचार्य जनों ने एक स्वर में हो करके कहा प्रभु! आप तपने के लिए जाईएं भगवन! क्योंकि विद्यालय में जब आचार्यजन तपे हुए होते है। तो मानो देखो, वह विद्यालय पवित्र होता है और ब्रह्मचारी भी उसकी शिक्षा का अध्ययन करते हुए, अपने में तपो में बन जाते है। मेरे प्यारे! देखो, जब उन्होंने कहा तो महर्षि याज्ञवल्क्य महाराज बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा धन्य है, हे ब्रह्मचारियों! अब मैं तप करने के लिए जा रहा हूँ। मेरे पुत्रों! आज्ञा पा करके, महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज बेटा! देखो, भयंकर वनो में पंहुचे और भयंकर वन में एक स्थली पर विराजमान हो करके न्यौदा में मन्त्रों का अध्ययन करने लगे और न्यौदा में मन्त्रों का अध्ययन करके उन्होंने कहा तपं ब्रह्मणे तपं रुद्राणि

गच्छत तपा मनश्चं ब्रव्हा।

99. मन के शोधन के लिए तप-३

व्याख्या: शृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

मेरे प्यारे! देखो, ऋषि ने वर्णन करते हुए कहा है कि तप करना चाहिए परन्तु तप है क्या? बेटा! वेद का मन्त्र कहता है। हे मानव! तू तपस्वी बन। हे मानव! तू तपमयी जगत को दृष्टिपात कर, परन्तु देखो, यह तप है क्या बेटा! इसके उत्तर में ऋषि कहता है। अन्नादं भूतं ब्रह्मण कृतं ब्रहे लोकां वृत्ति देवा वेद की आख्यिका कहती है क्या मन को पवित्र बनाने का नाम पवित्र तप कहा जाता है। यह मन पवित्र होगा तो बुद्धि मानो जानकारी में विशेषज्ञ होगी और वह मेधावी बनेगी और प्रज्ञावी बनेगी और ऋतम्भरा बन करके बेटा! परमपिता परमात्मा को साक्षात्कार दृष्टिपात किया जा सकेगा। मेरे प्यारे! देखो, यह मन पवित्र बनाने का नाम ऋषि ने बेटा! तप माना है। इसीलिए तप करना चाहिए। परन्तु मन को पवित्र बनाने का नाम बेटा! देखो, तप कहा गया है। तपं ब्रह्मणा तपं हिरण्यं तपम गच्छामि वर्णनं ब्रव्हे वृतम हे मानव! तू तपस्या में परणित हो जा, परन्तु देखो, यह मन जब पवित्र होता है। जब अन्न पवित्र होता है। इसीलिए अन्न को एकत्रित करना चाहिए। तो मुझे बेटा! ऐसा स्मरण आता रहता है। महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने मेरे पुत्रों! देखो, उस अन्न को एकत्रित करना प्रारम्भ किया जिस अन्न पर किसी का अधिकार नही था, उसे हमारे यहाँ शिलस्थ अन्न कहा जाता है। मेरे पुत्रों! देखो, ऋषि उस अन्न को एकत्रित करते और उसको जल में मानो देखो, अग्ररीति करके, खरल करके मानो देखो, उसका पान करते थे। मेरे पुत्रों! देखो, बारह वर्ष तक, इस प्रकार का उन्होंने कठोर तप किया और वह मुनिवरों! देखो, लेखनी बद्ध करने लगे। क्योंकि मन पवित्र हो गया, बुद्धि विचारने लगी, मेधावी बन गई। ऋतम्भरावी बन करके बेटा! प्रज्ञा को प्राप्त हो गये। ऋषि ने बेटा! देखो, एक अपने में एक वेदमन्त्र की आख्यिका ले करके उन्होंने एक लेखनियां बद्ध की उन्होंने कहा ब्रह्मणाति ब्रह्मणे लोकाम् क्योंकि ब्रह्म व्रतम ब्राह्मण क्या है? और ब्रह्मचारी कौन है? और ब्रह्म की चरी क्या है। को कौन चरता है।

100. तप के लिए मधु विद्या

व्याख्या: शृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

मेरे प्यारे! देखो, वेद का ऋषि जब एकान्त स्थली पर विद्यमान हो करके, जब वेद का अध्ययन करने लगा, मनो हृदय में मन का अध्ययन करने लगा तो बेटा! देखो, विचार आया कि वेदमन्त्र कहता है कि मनं ब्रव्हे। मानो देखो, मन से सम्बन्धी जितने प्राणी होते है उनको सन्तुष्ट करना चाहिए ब्रह्मवेत्ता को, और जब तक वह सन्तुष्ट नही हो जाते मानो उनके मन का जो तारतम्य है। मन से समन्वय रहता है। हो सकता है कि मन चञ्चल हो जाए, मानो परमात्मा के ध्यानावस्थित न हो, तो मेरे प्यारे! देखो, ऋषि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने विचारा, मेरी दो पत्नियाँ है। एक का नाम कात्यानी है एक का नाम मैत्रेय है। मुझे दोनों को सन्तुष्ट करना है। जब मुझे तपो में मानो जाना चाहिए। मेरे पुत्रों! मुझे स्मरण आता रहता है। महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने अपने आसन को त्याग दिया, और भ्रमण करते हुए मुनिवरों! देखो, उन्होंने अपने गृह में उन्होंने प्रवेश किया। और मुनिवरों! सबसे प्रथम वह कात्यानी के आसन पर पंहुचे, और कात्यानी ने बेटा! देखो, उनके चरणों की वन्दना की और एक आसन दिया, आईए भगवन! विराजिए वह विराजमान हो गएं कात्यानी ने कहा प्रभु! देखो, आज बिना सूचना के तुम्हारे आने का कारण क्या है? तुम्हारी प्रथम सूचना आ जाती थी, आज कोई सूचना नही आई, इसका मूल कारण क्या है? याज्ञवल्क्य मुनि बोले हे देवी! मैं प्रातःकालीन ब्रह्मचारियों के मध्य में, वेदाध्ययन कर रहा था और उसमें तप की बड़ी महिमा का वर्णन आ रहा था तो इसीलिए वेद का मन्त्र कहता था तपं हिरण्यं तपं दिव्यां गतं ब्रह्मणे तपः वेद का मन्त्र कहता है कि तपना चाहिए। तो हे देवी! मैं तप करने के लिए मैंने विद्यालय को त्याग दिया है और मैं तप करने जा रहा हूँ। तो वेद मन्त्रों का उच्चारण मेरे स्मरण आया ब्रह्मणे क्रममना वर्णा व्रत्यं मना गच्छं मनं ब्रहे व्रता शुद्धं दधि वृद्धा क्रममना वेद का वाक कहता है। देवी कि जो मन के सम्बन्धित जो प्राणी होते है। उनको सन्तुष्ट करना है। तुम मेरे मन से सन्बन्धित हो, इसीलिए मैं तुम्हें सन्तुष्ट करने के लिए आया हूँ। और मुझे आज्ञा दो कि मैं तप करने चला जाऊँ, मेरे प्यारे! देखो, याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने जब ऐसा कहा तो देवी ने कहा कहा प्रभु! यह तो हमारा बड़ा सौभाग्य है, जो मानो देखो, हमारा देवतव तपस्वी बन जाए तो प्रभु! यह तो हमारा सौभाग्य है, आप तप करने के लिए जाईएं। मेरे प्यारे! जब कात्यानी ने यह कहा कि आप तपं हिरण्यं तपश्चं ब्रव्हा आप तप करने के लिए जाईएं भगवन! और हम यहाँ तप करेंगे। मानो आप तप करने के लिए वनो में गमन करो, मेरे प्यारे! देखो, कात्यानी के मानो यह हृदय ग्राही शब्दों को ग्रहण करने के पश्चात मुनिवरों! देखो, ऋषि बड़े प्रसन्न हुए और ऋषि ने कहा धन्य है। हे देवी! मैं तप करने जा रहा हूँ। मेरे प्यारे! देखो, याज्ञवल्क्य मुनि महाराज अब मैत्रेयी के समीप पंहुचे और मैत्रेयी ने भी उसी प्रकार उसको आसन दिया और वह आसन पर विद्यमान हो गएं उन्होंने कहा कहो भगवन! आज बिना सूचना के तुम्हारा कारण क्या है? उन्होंने कहा है। मैत्रेयी मैं आज न्यौदा में वेद मन्त्रों का अध्ययन कर रहा था। प्रातःकालीन परन्तु उसमें तप की बड़ी महिमा का वर्णन आ रहा था क्या राजा भी तपा हुआ हो तो राष्ट्र ऊँचा बन सकता है और हम सब जब तक तप में नही जाएंगे अपने जीवन को महान नही बना सकेंगे। तो हे देवी! मैं तप करने जा रहा हूँ मेरे पुत्रों! देखो, मैत्रेयी ने कहा प्रभु! आपको यह प्रतीत है। क्या पत्नी जो होती है वह पति मानो देखो, पत्नी के लिए वह अमृता ब्रहे। वह उसी में मानो संलग्न रहती है। हे प्रभु! यदि आप तप करने जा रहे हो तो मेरा क्या बनेगा? महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि बोले कि हे देवी! तुम्हें प्रतीत है कि जब मेरा तुम्हारा किसी काल में शास्त्रार्थ हुआ था तो मानो आत्म ज्ञान के ऊपर शास्त्रार्थ हुआ मानो देखो, तुम्हारी आत्मा का जो प्रसंग था वह बड़ा विचित्र था। आज तुम्हारा वह ज्ञान कहाँ चला गया है। मैत्रेयी ने कहा प्रभु! वह ज्ञान तो मेरे समीप है। परन्तु एको बहुधा की जो कामना है, वह बड़ी विचित्र रहती है। भगवन! हे प्रभु! यदि इसीलिए आप यदि गमन कर जाएंगे तो हम अपने जीवन को अधूरेपन में स्वीकार करेंगे। याज्ञवल्क्य मुनि बोले नही देवी! तुम्हें यह प्रतीत है कि मधु विद्या क्या कहती है। मधु विद्या यही कहती है कि पति जो होता है वह पत्नी तक सीमित रहता है और यदि वह अपने लिए स्वतः पति बन जाएं अपनी आत्म मानो देखो, अपनी इन्द्रियों पर संयमी बन जाए तो उस मानव का कल्याण हो जाए। क्योंकि वह अधिपथ्य करने वाले को पतिवत कहते है। मेरे प्यारे! देखो, जो अपने में संयमी कहलाता है। यदि वह अपने में पति बन जाए मानो अपना ब्रह्मणे कृतं देवा अपने को पति, अधिपथ्य स्वीकार करे। तो बेटा! ऋषि कहता है कि वह अपने में महानता को प्राप्त हो जाए मेरे प्यारे! उन्होंने कहा देवी! पत्नी जो होती है वह पत्नी तक सीमित होती है और यदि वह पत्नी अपने को यह स्वीकार कर ले कि मैं पत्नी हूँ। मेरा अधिपथ्य है इन्द्रियों पर मेरा संयम है। मैं अपनी इन्द्रियों की पत्नी हूँ। तो मानो उसका कल्याण हो जाए, वे परमपिता परमात्मा को प्राप्त हो जाए हे देवी! मानो देखो, वह अपने लिए भी स्वयं पत्नी बन जाए तो कल्याण का मार्ग उसे प्राप्त हो जाएगा मेरे प्यारे! ऋषि ने कहा देवी! पुत्री जो होती है। वह पिता तक पुत्री होती है। यदि वह अपने लिए पुत्री बन जाए कि मैं परमपिता परमात्मा की पुत्री हूँ। मानो देखो, जल, अग्नि वायु सब सर्वत्र व परमपिता परमात्मा सन्निधान मात्र से मेरे जीवन को क्रिया दे रहा है। मानो देखो, उसकी आभा में मैं रत्त हो रही हूँ। तो इसीलिए मानो यदि वह अपने लिए मानो पुत्री बन जाए और यह स्वीकार कर ले कि मैं परमपिता परमात्मा के राष्ट्र में हूँ। और उसी की मैं पुत्री हूँ तो मानो देखो, मैं पुत्री बन करके यू ही महानता में परणित हो करके परमात्मा को प्राप्त हो जाऊँ महानता में परणित हो जाए मेरे प्यारे! ऋषि ने कहा हे देवी! पुत्र जो होता है, वह माता तक सीमित होता है यदि पुत्र स्वयं देखो, अपने लिए पुत्र बन जाए तो मानो देखो, उसका कल्याण हो जाए और वह यह स्वीकार कर ले कि मैं परमपिता परमात्मा का पुत्र हूँ, परमात्मा के ही आंगन में ही मैं विद्यमान हूँ। परमात्मा ही मानो देखो, जैसे पुत्रवत को सर्वत्र सुविधा देता है। ऐसे ही परमपिता परमात्मा मुझे प्रदान कर रहे है। तो मानो देखो, मैं स्वतः अपने लिए वह पुत्र बन करके परमपिता परमात्मा को प्राप्त को प्राप्त हो जाऐ हे देवी! संसार में जो भी मानो देखो, वित्तेषणा है। नाना प्रकार की वित्तैषणा में लगा हुआ है। लोकैषणा में लगा हुआ है। मानो यदि वह लोकप्रियता के विचार में रत्त हो जाता है। लोकप्रिय बन जाता है। तो वह मानो देखो, वे परमपिता परमात्मा की महती और अनन्तता में सदैव अपने को ले जाता है और यदि वह मानं ब्रह्मणे कृतं देखो, वित्त अपने आत्म तत्त्व के लिए, तृप्त होने के लिए, क्या मैं इससे तृप्त हो जाऊँगा। मेरे प्यारे! देखो, ऋषि कहता है कि यदि वित्त परमपिता को वो स्वीकार कर लें कि यह परमपिता परमात्मा की सम्पदा है। इसका अधिपथ्य मानो देखा प्रभुतव है। तो मुनिवरों! देखो, उस मानव का कल्याण हो जाए वास्तव में देखो, जब संसार में आता है प्राणी जब मुनिवरों! देखो, वह अपने में कोई, द्रव्य स्वामी नही बन करके आता और जब संसार से चला जाता है जब द्रव्य, स्वामीपन को साथ नही ले जाता, इसलिए मुनिवरों! देखो, जो चित्त में दिए हुए क्रियाकलाप हैं कर्म है। मानो देखो, जो उसको चित्त के मण्डल में स्थिर करके यहाँ से चला जाता है। तो विचार आता है। बेटा! ऋषि कहता है। याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने कहा हे देवी! इस विद्या का अध्ययन करो और यह विद्या अपने में महानता का गमन कराती है, महानता में तुम्हें ले जाएगी।

मेरे पुत्रों! देखो, जब ऋषि ने इस प्रकार वर्णन किया तो देवी मौन हो गई। और देवी ने कहा संसार में लोक प्रियता भी मानव के लिए है। वह लोकप्रियता यदि परमात्मा को उसमें स्वीकार कर ले तो मुनिवरों! वह अभिमान से रहित हो करके परमपिता परमात्मा को प्राप्त हो जाता है। तो मेरे प्यारे! जब ऋषि ने इस प्रकार अपनी पत्नी को उपदेश दिया और वह मधु विद्या प्रदान की तो बेटा! वह नतमस्तिष्क हो गई। उन्होंने कहा धन्य हे प्रभु! आप ने मेरे अज्ञान को दूरी किया है। आप को धन्य है, आप का ज्ञान यह बलवती होता रहे, प्रभु! आप तप करने चले जाईएं। मेरे प्यारे! देखो, मैत्रेयी ने कहा यदि मानव के द्वारा देखो, ज्ञान से उपरामता में, यदि तप नही होता है। तो ज्ञान भी अपंग होता है। जैसे आयुर्वेदाचार्य है और वह आयु के वेद को जानता है। वनस्पतियो को जानता है। यदि उसे आत्म ज्ञान नही है ब्रह्मज्ञान नही है। तो देखो, वह आयुर्वेद भी अपंग बन जाता है। इसी प्रकार जैसे राजा है। यदि राजा मानो देखो, शासन करना जानता है। ब्रह्मज्ञान नही जानता, निरभिमानी नही है। तो मानो देखो, वह राजा भी अपंग कहलाता है। इसी प्रकार प्रत्येक मानव मानो अपनी मानवीयता में गमन करता है।

मैत्रेयी ने जब ऐसा कहा, ऋषि ने कहा देवी! तुम्हें धन्य है अब मैं तप करने के लिए जा रहा हूँ मैत्रेयी से कहा देवी! तुम मेरी दो पत्नियाँ हो, एक कात्यानी तुम्हारा बंटवारा किए देता हूँ मैत्रेयी ने कहा प्रभु! हम स्वतः अपना बंटवारा कर पायेंगे, आप तप के करने लिए चले जाईएं। मेरे पुत्रों! देखो, मुझे स्मरण आता रहता है। महर्षि याज्ञवल्क्य मनि महाराज ने बेटा! आसन को त्याग दिया, और आसन को त्यागते हुए अमृतां ब्रह्मणे उद्गीत गाते हुए बेटा! भयंकर वन में पंहुचे और भयंकर वन में जा करके उन्हे न्यौदा में मन्त्रों का उद्गीत गाने लगे और उनमे एक वेदमन्त्र आया मनरतं ब्रह्मणा तपं हिरण्यं रथे। प्रव्हा वेद की आख्यिका यह कहती है कि यह तप क्या है और वेद का मन्त्र पुनः उत्तर देता है। मनस्तप प्रही व्रणा इस मन को पवित्र बनाने का नाम तप कहलाता है।

101. सात प्रकार का अन्न

व्याख्या: शृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

तो मेरे प्यारे! देखो, ऋषि ने कहा देवी! इन परमाणुओं की रक्षा करने वाला, मानो अपने में महान कहलाता है। मेरे पुत्रों! देखो, जब ऋषि ने इस प्रकार का उत्तर दिया, देवी ने कहा प्रभु! धन्य है। मैं यह जानना चाहती हूँ भगवन! कि जब मानो यह वीरतव और वीरांगनातव नही होता तो यह परमाणुवाद कहा रहता है भगवन! तो मेरे प्यारे! देखो, वह अमृतं शकुंतका के प्रश्न करने पर, ऋषि ने कहा हे देवी! ये परमाणुवाद मानो देखो, यह अन्न में विद्यमान रहता है। देखो, जब सृष्टि के पिता ने सृष्टि का सृजन किया, अथवा इसको उत्पन्न किया तो सात प्रकार के अन्न को उत्पन्न किया, यह सात प्रकार का अन्न कहलाता है। मेरे पुत्रों! देखो, एक पौधा है उस पर दो प्रकार का अन्न है, एक मानव पान करता है, तो एक पशु पान कर रहा है, मेरे प्यारे! देखो, मानव पान कर रहा है, तो ओज और तेज की उत्पति कर रहा है और पशु पान कर रहा है तो दुग्ध आहार

करा रहा है। वह पय दे रहा है। मेरे प्यारे! देखो, वह प्रभु कितना महान है, कितना रचयिता है पुत्रों! एक ही पौधा है उस पर दो प्रकार का अन्न है, एक को मानव पान कर रहा है। तो एक को पशु पान कर रहा है। मेरी प्यारी माता एक अन्न को भोजनालय में तपा रही है। मेरे पुत्रों! देखो, ओज और तेजोमयी प्राणी बन रहा है। और वही मातां ब्रह्मे और वह परमाणु जब पशु पान करता है, तो गो पान करता है, मेरे प्यारे! वह पय दे रहा है, दुग्धाहार करा रहा है, यह कैसा विचित्र प्रभु का यह विज्ञान है बेटा! मेरे प्यारे! देखो, यह दो प्रकार का अन्न जो मानव को और पशु का कहलाया गया है। और तृतीय जो अन्न है, वह मानो देखो, हूत कहा गया है, आहुति देना यज्ञमान अपनी यज्ञशाला में विद्यमान है, अपनी दिव्या से कहता है कि हे दिव्या! आओ, हम अग्नि को देवताओं का मुख बना करके, मानो उसमें हूत करते चले जाएं, मेरे प्यारे! देखो, वह आहुति दे रहे हैं। हूत कर रहे हैं, देवतव को प्राप्त हो रहे हैं, क्योंकि अग्नि देवताओं का दूत माना गया है। इसीलिए हमारे यहां आहुति देने का नाम भी बेटा! देखो, अन्नाद है, जो देवताओं का प्रदान किया जाता है। देवतव अपने में ग्रहण करते रहते हैं, मेरे पुत्रों! देखो, अग्नं ब्रह्मणा व्रतं देवाः हे आहुति देने वाले! जब तू अपने हृदय से आहुति देता है, तो अग्नि उसे ग्रहण कर लेती है, और अग्नि सर्वत्र देवताओं में उसे वितरण कर देती है। और करती हुई मानो देखो, यह पृथ्वी नाना प्रकार के व्यंजनों वाली बन जाती है। उसी अन्नादं भूतं ब्रह्मणा सब देवता, स्वस्थ हो करके बेटा! देखो, अन्नाद को जन्म देते हैं। मेरे प्यारे! देखो, ये पृथ्वी अमृता है, और यह अग्नि मुनिवरों! देखो, तेजोमयी कहलाती है। यह मानो देखो, अग्नि तेजोमयी है, देवताओं का मुख है, इसमें हूत करना बेटा! वह अन्नाद कहते हैं, उसे अन्न कहा जाता है जो देवता जिसे ग्रहण कर रहे हैं। सूर्य की किरणें अपने में ग्रहण कर रही हैं। चन्द्रमा की कान्ति अपने में धारण कर रही हैं। मेरे प्यारे! देखो, वह हूत हो रहा है, वह अन्नाद है, जो देवताओं का प्रदान किया जाता है। एक अन्नाद मेरे प्यारे! देखो, प्रहूत कहा जाता है। जो पुरोहितों को प्रदान किया जाता है, वह पुरोहित कहलाते हैं, जो बेटा! जन समूह में लगे हुए है। जो राष्ट्र और देखो, समाज का कल्याण चाहने वाले हैं। वह भी मानो देखो, उसे प्रहूत कहा जाता है, पुरोहित जन है, बेटा! मुझे वह वाक स्मरण आ रहा है, मेरे प्यारे! देखो, एक समय त्रेता के काल में बेटा! महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज और महर्षि विश्वामित्र एक स्थली पर विद्यमान हो करके विचार विनिमय कर रहे थे, विचार विनिमय करते हुए मुनिवरों! देखो, महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने कहा हे भगवन! हे विश्वामित्र! मेरी इच्छा ऐसी है, क्या तुम अमृतां देवत्वं मानो तुम दण्डक वनों में एक देखो, एक धनुर्याग करो, जिससे मानो देखो, ब्रह्मचारी अपने में अस्त्रों शस्त्रों में युक्त हो जाएं। उन्होंने कहा बहुत प्रियतम।

तो मैं यह विचार विनिमय यह दे रहा था, क्या मुनिवरों! देखो, एक अन्नाद प्रहूत होता है। जो पुरोहित जन होते हैं, राजा के राष्ट्र में बेटा! पुरोहित होने चाहिए, क्योंकि वह भी अन्नाद है, क्योंकि समाज इससे समाज तृप्त होता है। राष्ट्रवाद इससे तृप्त होता है मेरे प्यारे! देखो, उसको प्रहूत कहा जाता है। मुनिवरों! देखो, यह चौथा अन्न कहलाता है।

मेरे प्यारे! देखो, ये तीन अन्न और होते हैं जो आत्म तत्त्व हो जानने वाले होते हैं, मेरे प्यारे! देखो, मन, प्राण और विचार ये तीन अन्न कहलाते हैं, जिससे बेटा! आत्म का उत्थान होता है। मेरे प्यारे! देखो, मन से विचार मन और प्राण का, दोनों की संज्ञा बन करके तीसरा अन्नाद मानो देखो, विचार की उत्पति होती है। विचार विनिमय करता रहता है, एक स्थली पर बेटा! देखो, मन को प्राण के साथ में विचार और जब वह विचार विनिमय करता रहता है, प्राण और मन को एक सूत्र में लाने का प्रयास करता है, मेरे प्यारे! देखो, उससे विचार बनते हैं, और इन विचारों को मन ओर देखो, प्राण और विचार का का तीनों का साकल्य बना करके, उसको बेटा! हृदय रूपी यज्ञशाला में साधक जन, साधना करने वाला बेटा! हूत कर रहा है, वह आहुति दे रहा है, जिससे बेटा! देखो, ज्ञान रूपी अग्नि प्रदीप्त हो करके, मानव को बेटा! देखो, विवेक की उत्पति हो करके, परमात्मा को प्राप्त हो जाता है। आओ मेरे प्यारे! मैं इस सम्बन्ध में विशेष विवेचना देने नही आया हूँ विचार केवल ये मुनिवरों! यह कि मानव का मन, प्राण और विचार यही मानव को सार्थक बनाता है विचार विनिमय करता हुआ बेटा! परमपिता परमात्मा की महती को महती को जानने लगता है। वही प्राणी बेटा! मोक्ष की पगडण्डी को ग्रहण कर लेता है। जो मेरे प्यारे! देखो, मन और प्राण के द्वारा उन्हें अन्नत करा करके, मुनिवरों! देखो, विचारों की तरंगों को, अपने में लाना एकत्रित कर देता है, तो वह जो हृदय इसमें हृदय में सब स्थिति होती है, प्राणी की बेटा! देखो, किसी भी इन्द्रिय से कोई भी, विषय हो, वह इससे बेटा! हृदय में समाहित हो जाता है, वह हृदय अगम्य में परणित होता हुआ, मुनिवरों! देखो, हृदय वृत्ति बन जाता है वह जिज्ञासु बन करके, यथार्थी बन जाता है, मानो वही ज्ञान में प्रवेश हो करके, परमपिता परमात्मा की महती को जानने लगता है।

102. अथ योगानुशासनम्॥ योग दर्शन १.१

अथ। योगानुशासनम्।

शब्दार्थ- (अथ) अब प्रारम्भ किया जाता है (योग-अनुशासनम्) योग के स्वरूप को बताने वाले शास्त्र का।

स्वामी सत्यपति

पदार्थः (अर्थ) अब(योगानुशासनम्) योगशास्त्र का प्रारम्भ किया जाता है। सूत्र में "अथ" शब्द का अधिकार का वाचक है, अधिकार, प्रस्ताव, प्रारम्भ, यही एक ही अर्थ के बोधक हैं, समाधिक अर्थ में होने वाली "युज्" धातु से योग शब्द सिद्ध होता है जिसके अर्थ यहां समाधिक के हैं और "अनुशिष्यतेऽनेनेत्यनुशासनम्"=जिससे लक्षण, भेद, उपाय, प्रयोजन आदि प्रतिपादन किये जायं उसको "अनुशासन" कहते हैं॥ भाव यह है कि योग के लक्षणादि को विस्तारपूर्वक प्रतिपादन करनेवाले योगशास्त्र का प्रारम्भ करते हैं॥ सं०-अब योग का लक्षण कहते हैं-

सूत्रार्थः अब योग के स्वरूप को बताने वाले शास्त्र का प्रारम्भ किया जाता है। "अथ" शब्द अधिकार के लिए है। यह शब्द प्रारम्भ को कहता है। इस शब्द से 'योगानुशासन' नामक शास्त्र प्रारम्भ किया जाता है यह जानना चाहिए। योगानुशासनम् = योग के स्वरूप (लक्षण, भेद, उपाय, फल) को बतलाने वाले शास्त्र का उपदेश किया जाता है। यह 'योग' शब्द युज् (समाधौ) धातु से 'घञ्' प्रत्यय करने पर सिद्ध होता है। 'अनुशासन' शब्द 'अनु' उपसर्गपूर्वक 'शासु अनुशिष्टौ ' धातु से 'ल्युट्' प्रत्यय करने पर सिद्ध होता है। ""योगो अनुशिष्यतेऽनेनेति योगानुशासनम् "" अर्थात् योग का उपदेश जिस शास्त्र के द्वारा किया जाता है वह 'योगानुशासन' नामक शास्त्र कहलाता है। अथवा इसका द्वितीय अर्थ 'पुन: उपदेश' है। यह (योग का) उपदेश सृष्टि के आरम्भ में परमेश्वर एवं वेदों के द्वारा ऋषियों को प्राप्त हुआ। उन्होंने उस उपदेश (योग) का अनुष्ठान किया, साक्षात्कार किया तथा अन्यों को उसका उपदेश दिया। इस परम्परा से प्राप्त योग का महर्षि पतञ्जलि ने ग्रन्थ के रूप में प्रणयन किया। यही परम्परा अनुशासन शब्द के द्वारा कही गई है। योग 'समाधि' को कहते हैं। समाधि चित्त की सब भूमियों में अर्थात् अवस्थाओं में रहने वाला चित्त का धर्म है। चित्त सत्त्व, रजस्, तमस् नामक जड़ पदार्थों से मिलकर बना हुआ एक पदार्थ है। यह जीव का एक ऐसा ही आन्तरिक साधन है जैसे कि हस्तपादादि बाह्य साधन हैं। जिस प्रकार हस्तपादादि साधन जीव के आधीन हैं उसी प्रकार चित्त भी उसी के आधीन है।

चित्त की पाँच भूमियाँ हैं- क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध। जीवात्मा जिस अवस्था में चित्त को विविध विषयों में तीव्रता से चलाता है उस अवस्था को 'क्षिप्त' कहते हैं। उस अवस्था में, जो कार्य हानिकारक होते हैं, उन कार्यों को भी वह कर बैठता है। इस अवस्था में रजोगुण की प्रधानता होती है। सत्त्वगुण तथा तमोगुण गौण रहते हैं। सांख्य एवं योगशास्त्र में गुण शब्द से सत्त्व, रजस्, तमस् नामक द्रव्य ग्रहण किये जाते हैं। इन तीनों का समुदित नाम प्रकृति, प्रधान आदि है।

निद्रा, तन्द्रा, आलस्य, मूर्छा, आदि अवस्थाओं में जीवात्मा को जब विशेष ज्ञान नहीं होता अथवा विशेष ज्ञान नहीं कर पाता उसको 'मूढ़' अवस्था कहते हैं। इस अवस्था में सत्त्व एवं रजोगुण अप्रधान रहते हैं, तमोगुण प्रधान रहता है।

जिस अवस्था में मनुष्य किसी विशेष विषय पर अपने चित्त को एकाग्र करने का प्रयास करता है तो चित्त में कुछ एकाग्रता आती है। परन्तु वह स्थिति किसी बाधक कारण से भंग हो जाती है, उसको 'विक्षिप्त' अवस्था कहते हैं। बाधक कारण बाह्य, आभ्यन्तर नाम से दो प्रकार के होते हैं; उदाहरणार्थ तीव्र शब्द, स्पर्श, गन्ध आदि बाह्य तथा अभिलाषा से जनित स्मृति, आलस्य, निद्रा, तन्द्रा, संशय आदि आन्तरिक कारण। इसमें सत्त्वगुण प्रधान और तमोगुण गौण होता है, कभी-कभी रजोगुण प्रकट होता रहता है।

जिस अवस्था में योगाभ्यासी विवेक, वैराग्य और अभ्यास के द्वारा अपने चित्त को योग के लिए अपेक्षित किसी एक विषय में अधिकारपूर्वक बहुत काल पर्यन्त स्थिर कर लेता है, उसको 'एकाग्र' अवस्था कहते हैं। इस अवस्था में 'सम्प्रज्ञात समाधि' होती है। इसमें सत्त्वगुण प्रधान और रजस्-तमस् गौण रहते हैं। इस अवस्था में योगाभ्यासी को पदार्थ का यथार्थ स्वरूप ज्ञात होता है। उसके क्लेश क्षीण होते हैं, उसके अशुभ एवं शुभ सकाम कर्मों की वासनाएँ शिथिल होती हैं और वह असम्प्रज्ञात समाधि को प्राप्त करने में समर्थ होता है। उस सम्प्रज्ञात समाधि के वितर्कानुगत, विचारानुगत, आनन्दानुगत और अस्मितानुगत नाम से चार भेद हैं। इनके विषय में इसी पाद के १७वें सूत्र में बतलाया जायेगा।

जिस अवस्था में योगाभ्यासी सम्प्रज्ञात समाधि की ऊँची अवस्था को प्राप्त कर लेता है तो उसको उसमें भी दोष दिखाई देने लग जाते हैं; उन दोषों के कारण 'परवैराग्य' उत्पन्न होता है। उस अवस्था में चित्त की समस्त वृत्तियों का निरोध हो जाता है। इसको 'निरुद्ध' अवस्था कहते हैं। इस अवस्था में 'असम्प्रज्ञात समाधि' होती है। यह ईश्वर साक्षात्कार की स्थिति है।

इनमें से केवल एकाग्र एवं निरुद्ध अवस्था में योग माना जाता है, शेष क्षिप्तादि अवस्थाओं में नहीं। यहाँ पर यह बात विशेष ध्यान देने की है कि ये क्षिप्त आदि पाँच अवस्थाएं चित्त की हैं, जीवात्मा की नहीं। अविद्या के कारण व्यक्ति इन अवस्थाओं को अपनी (अर्थात् जीवात्मा की) मान लेता है। इसका परिणाम यह होता है कि योगाभ्यासी चित्त को अपने (आत्मा के) अधिकार में नहीं रख पाता और मनुष्य जीवन का मुख्य प्रयोजन जो ईश्वर साक्षात्कार है, उसको सिद्ध नहीं कर पाता।

चित्त की इन पाँच अवस्थाओं में से किसी को दूर करना, अन्य को उत्पन्न करना एक सीमा तक योगाभ्यासी के आधीन है। इसके अनुसार व्यक्ति क्षिप्तादि को हटाकर एकाग्रता को और एकाग्रता को हटाकर निरोध को उत्पन्न कर सकता है। किन्तु असावधानी, आलस्य, प्रमादादि के कारण ऊँची अवस्था से नीची अवस्था को प्राप्त हो सकता है। ऐसी स्थिति में निराश नहीं होना चाहिए, क्योंकि निराश होने से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। अतः साधक ने जिन उपायों से ऊँची अवस्था को प्राप्त किया था उन्हीं उपायों का उचित प्रयोग करके पुनः ऊँची स्थिति को प्राप्त कर सकता है। कुछ ऐसी स्थितियाँ भी होती हैं जिनमें व्यक्ति प्रयत्न करने पर भी क्षिप्तादि को हटाकर एकाग्र और निरुद्ध अवस्थाओं को प्राप्त नहीं कर पाता, जैसे कि तीव्र रोग, आघात, अतिशीत, अति उष्णता, अङ्ग भंग होने आदि में। परन्तु विशेष उच्च अवस्था को प्राप्त योगी इस स्थिति में चिन्तित और भयभीत नहीं होता, सरलता से उस दुःख को सहन कर लेता है।।"

तस्य लक्षणाभिधित्सयेदं सूत्रं प्रववृते। उस योग का लक्षण करने की इच्छा से यह सूत्र प्रवृत्त हुआ है।

व्यास भाष्य-संस्कृत

अथेत्ययमधिकारार्थः। योगानुशासनं शास्त्रमधिकृतं वेदितव्यम्। योगः समाधिः। स च सार्वभौमश्चित्तस्य धर्मः। क्षिप्तं, मूढं, विक्षिप्तमेकाग्रं, निरुद्धमिति चित्तभूमयः। तत्र विक्षिप्ते चेतसि विक्षेपोपसर्जनीभूतः समाधिर्न

योगपक्षे वर्तते। यस्त्वेकाग्रे चेतसि सद्भूतमर्थं प्रद्योतयति क्षिणोति च क्लेशान्कर्मबन्धनानि श्लथयति, निरोधमभिमुखं करोति स संप्रज्ञातो योग इत्याख्यायते। स च वितर्कानुगतो, विचारानुगत, आनन्दानुगतोऽस्मितानुगत इत्युपरिष्टात्प्रवेदयिष्यामः। सर्ववृत्तिनिरोधे त्वसंप्रज्ञातः समाधिः॥

व्यास भाष्य-देवनागरी

अथ' शब्द अधिकारार्थ है। यह शब्द आरम्भ को कहता है। इस शब्द से 'योगानुशासन' नामक शास्त्र प्रारम्भ किया जा रहा है, यह जानना चाहिए। 'योग' समाधि को कहते हैं। और वह (समाधि) चित्त की सब भूमियों में रहने वाला धर्म है। चित्त की क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध नामक पाँच भूमियाँ हैं। इन भूमियों में से विक्षिप्त भूमि वाले चित्त की समाधि विक्षेप के कारण गौण हो जाने से योग की कोटि में नहीं आती। जो समाधि एकाग्र भूमि वाले चित्त में होती है, विद्यमान पदार्थ को यथार्थ रूप में प्रकाशित करती है, क्लेशों को क्षीण करती है, कर्म के बन्धनों को शिथिल करती है, असम्प्रज्ञात समाधि को सम्मुख लाती है, वह सम्प्रज्ञात योग कहा जाता है। और वह वितर्कानुगत, विचारानुगत, आनन्दानुगत, अस्मितानुगत (इन चार अवस्थाओं वाली है), ऐसा आगे स्पष्ट रूप से बतायेंगे। सब वृत्तियों का निरोध होने पर तो असम्प्रज्ञात समाधि होती है। योगार्थ प्रकाश ओ३म् शन्नो मित्रः शं वरुणः शन्नो भवत्वर्य्यमा।

राजर्षि भोज वृत्ति संस्कृत

अनेन सूत्रेण शास्त्रस्य सम्बन्धभिधेयप्रयोजनान्याख्यायन्ते। अथ शब्दोऽधिकारद्योतको मङ्गलार्थकश्च। योगो युक्तिः समाधनम्। युज् समाधौ अनुशिष्यते व्याख्यायते लक्षणभेदोपायफलैर्येन तदनुशासनम्। योगस्यानुशासनं योगानुशासनम्। तदा शास्त्रपरिसमाप्तेरधिकृतं बोद्धव्यमित्यर्थः। तत्र शास्त्रस्य व्युत्पाद्यतया योगः ससाधनः सफलोऽभिधेयः। तदव्युत्पादनञ्च फलम्। व्युत्पादितस्य योगस्य कैवल्यं फलम्। शास्त्राभिधेययोः प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावलक्षणः सम्बन्धः। अभिधेयस्य योगस्य तत्फलस्य च कैवल्यस्य साध्यसाधनभावः। एतदुक्तं भवति व्युत्पाद्यस्य योगस्य साधनानि शास्त्रेण प्रदर्श्यन्ते तत्साधनसिद्धो योगः कैवल्याख्यं फलमुत्पादयति।

राजर्षि भोज वृत्ति देवनागरी-विज्ञानाश्रमी जी

तत्र को योगः इत्याह " (अनेन सूत्रेण शास्त्रस्य सम्बन्धाभिधेय) इस सूत्र से शास्त्र का सम्बन्ध ध्येय और (प्रयोजनान्याख्यायन्ते) प्रयोजन कहे जाते हैं। (अथ शब्दोऽधि- कारद्योतकः) अथ-शब्द अधिकार का प्रकाशक और (मङ्गलार्थकश्च) मङ्गला- र्थक है। (योगो युक्तिः समाधानम्) योग मेल को कहते हैं। (युज् समाधौ) युज् धातु समाधि अर्थ में होने से। (अनुशिष्यते व्याख्यायते लक्षणभेदोपायफलैर्येन तदनुशासनम्) व्याख्यान किया जाता लक्षण भेद उपाय और फलों के सहित जिस के द्वारा वह 'अनुशासन' कहलाता है। (योगस्यानुशासनं योगानुशासनम्) योग का अनुशासन योगानुशासन का अर्थ है। (तदा शास्त्रपरिसमाप्तेरधिकृतं बोद्धव्यमित्यर्थः) उस का शास्त्र समाप्ति पर्यन्त अधिकार है ऐसा जानना चाहिये, यह अर्थ है। (तत्र शास्त्रस्य व्युत्पाद्यतया योगः ससाधनः सफलोऽभिधेयः) उस में शास्त्र से प्रतिपादन किया हुआ साधन और फल सहित योग अभिधेय है। (तद्व्युत्पादनश्च फलम्) और उसका प्रतिपादन किया हुआ फल योग है। (व्युत्पादितस्य योगस्य कैवल्यं फलम्) प्रतिपादन किये हुए योग का कैवल्य फल है। (शास्त्राभिधेययोः प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावलक्षणः सम्बन्धः) शास्त्र और योग दोनों का प्रतिपाद्य प्रतिपादक भावरूप सम्बन्ध है। (अभिधेयस्य योगस्य तत्फलस्य च) और ध्येय योग का उसके फल (कैवल्येन साध्यसाधनभावः) कैवल्य के साथ साध्य साधन भाव सम्बन्ध है। (एतदुक्तं भवति) सारांश यह है कि- (व्युत्पाद्यस्य योगस्य साध- मानि शास्त्रेण प्रदर्श्यन्ते) प्रतिपादन करने योग्य योग के साधन इस शास्त्र से दिखलाये जाते हैं, (तत्साधनसिद्धो योगः कैवल्याख्यं फल- मुत्पादयति) वह साधन सिद्ध योग कैवल्य नामवाले फल को उत्पन्न करता है॥ : (तत्र को योगः ?) उस विषय में योग क्या पदार्थ है ? (इत्याह) यह भुगले सूत्र से कहा है-अधिकार अर्थात किसी विषयको प्रारम्भ करके अन्त तक उसका वर्णन करना समाधिशास्त्र।

103. योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः॥ योग दर्शन १.२

योगः , चित्त , वृत्ति , निरोधः॥

चित्त चित्त अर्थात् अन्त:करण (की), वृत्ति वृत्तियों (का), निरोध: निरोध (सर्वथा रुक जाना), योग: योग है।

चित्त अर्थात् अन्त:करण की वृत्तियों का निरोध सर्वथा रुक जाना योग है।

महर्षि दयानन्द कृत अर्थ ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका

उपासनासमये व्यवहारसमये वा परमेश्वरादतिरिक्त-विषयादधर्मव्यवहाराच्च मनसो वृत्तिः सदैव निरुद्धा रक्षणीयेति॥

पदार्थ: चित्त की वृत्तियों को सब बुराईयों से हटाके शुभ गुणों में स्थिर करके परमेश्वर के समीप में मोक्ष को प्राप्त करने को योग कहते हैं और वियोग उसको कहते हैं कि परमेश्वर और उसकी आज्ञा से विरुद्ध बुराईयों में फंस के उससे दूर हो जाता है।

महर्षि दयानन्द-सत्यार्थप्रकाश नवम समुल्लास

ये योगशास्त्र पातञ्जल के सूत्र हैं। मनुष्य रजोगुण, तमोगुण युक्त कर्मों से भी मन को रोक शुद्ध सत्त्वगुणयुक्त कर्मों से भी मन को रोक शुद्ध सत्त्वगुणयुक्त हो पश्चात् उसका निरोधकर एकाग्र अर्थात् एक परमात्मा और धर्मयुक्त कर्म इनके अग्रभाग में चित्त को ठहरा रखना, निरुद्ध अर्थात् सब ओर से मन की वृत्ति को रोकना॥ १॥ जब चित्त एकाग्र और निरुद्ध होता है तब सब के द्रष्टा ईश्वर के स्वरूप में जीवात्मा की स्थिति होती है। इत्यादि साधन मुक्ति के लिए करे।

ओ३म् अपां फेनेन नमुचेः शिरऽइन्द्रोदवर्त्तयः। विश्वा यदजयः स्पृधः॥ यजुर्वेद १९.७१

इन्द्रो देवता, गायत्री, षड्जः।

पदार्थ: हे इन्द्र! सूर्य के समान वर्तमान सेनापते! जैसे सूर्य, (अपाम्) जलों की, (फेनेन) वृद्धि से, (नमुचेः) अपने स्वरुप को न छोडने वाले मेघ के, (शिरः) घनाकार बादलों को काटता हैए वैसे ही तू अपनी सेनाओं को (उदवर्त्तयः) उत्कृष्टता को प्राप्त कर (यत्) जो (विश्वा) सब (स्पृधः) स्पर्द्धा करने हारी शत्रुओं की सेना है, उनको (अजयः) जीत।

व्याख्या: शृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

एक मानव ऐसा है जो अप्रत अपने विचारों से दूसरों को प्रभावित करता हैं वह योग है योग की नाना प्रकार की प्रतिभाएं मानी गई हैं जैसा महर्षि पतञ्जलि जी ने योग की एक ही प्रक्रिया प्रकट की कि अपनी प्रवृत्तियों का निरोध कर लो परन्तु यह निरोध कैसे किया जाता हैं निरोध उस काल में होगा जबकि हमारा अपनी इन्द्रियों पर संयम होगा अब संयम कैसे होगा मानो संयम होगा परमात्मा के चिन्तन से परमात्मा का चिन्तन किया जाएं अध्ययन किया जाएं और मुनिवरों! निदिध्यासन किया जाएं उस काल में मानव अपनी वास्तविक कारण को प्राप्त हो जाता हैं वास्तव में योग की उच्चारण करना मानव के लिए बहुत सहज होता हैं।

एक समय महर्षि रेवक मुनि महाराज से भारद्वाज जी ने कहा था कि हे भगवन्! मैं यह जानना चाहता हूँ कि यह जो हृदयरूपी गुफा है, मानो यह जो आत्मा का ज्ञान है, इसका जो विद्वान है उसका कोई ऐसा मूल कारण हो जिससे हमारे अन्तःकरण में वह संस्कार न उत्पन्न हों जिन संस्कारों से हमारे आवागमन की एक प्रतिभा बनती रहती है। गाड़ीवान रेवक थे उन्होंने कहा कि आपने यह वाक्य तो बहुत सुन्दर कहा है परन्तु इसका विचार विनिमय किया जाएं। हमारे ऋषि मुनियों का हृदय बड़ा विशाल और सत्यवादी, स्पष्टवत में प्राप्त होता रहा है। महर्षि रेवक महान तपस्वी थे। ६१ वर्ष तक मौन धारण किया ६१ वर्ष तक उन्होंने निद्रा पान नहीं किया। उन्होंने कितना सुन्दर उत्तर दिया कि हे प्रभु! मैं इस प्रतिभा को अभी तक नहीं जानता क्योंकि इस पर मैं अनुसन्धान कर रहा हूँ। बेटा! उनका हृदय कितना महान होता है। आज हम जितने सत्यवादी बन जाते हैं तो हमारा हृदय निर्मल और स्वच्छ बनने लगता है नाना छलों से रहित हो जाता है। बेटा! वह संस्कार स्वतः ही मानव के हृदय में नहीं व्याप्ते जिनसे मानव का आवागमन बनने लगता है। भारद्वाज ने महर्षि रेवक जी को प्रणाम किया और प्रणाम करते हुए वह महर्षि पिप्लाद ऋषि के आश्रम में प्रविष्ट हो गये। पिप्लाद मुनि ने कहा कि आइये, ऋषिवर! पधारिए। ऋषि ने विराजमान होकर वही प्रश्न किया। उन्होंने कहा कि प्रभु! मैं यह जानना चाहता हूँ कि मानव के द्वारा ऐसा कौनसा सङ्कल्प है, ऐसा कौन सी प्रतिभा है जिससे आवागमन के संस्कार हमारे अन्तःकरण में प्रविष्ट न होने दें।

उस समय महर्षि पिप्लाद ने कहा कि भाई इस पर विचार विनिमय करेंगे। दोनों ऋषियों का विचार विनिमय प्रारम्भ होने लगा। उन्होंने कहा कि यदि ऐसा कोई कार्य है, तो वह जो आन्तरिक भावनाएं हैं उन आन्तरिक भावनाओं को इतना उज्ज्वल बनाया जाएं इतना पवित्र बनाया जाय कि जिस से यह संस्कार का जो नाना प्रकार का द्वेषवाद है, नाना प्रकार का जो रूढ़िवाद है, मस्तिष्कों में उसका संस्कार उत्पन्न न हो। हमें वह स्वप्नवत को भी प्राप्त नहीं होना चाहिए। महर्षि भारद्वाज बोले कि हे भगवन्! जब हम संसार में रमण करते हैं, नाना प्रकार की औषधियों का पान करते हैं हमारा प्राण इस वायु मण्डल में भ्रमण करता है, प्रकृति के गर्भ में हम आए हैं, माता अहिल्या की गोद में हम आए हैं तो नाना प्रकार के संस्कारों का जन्म होना स्वाभाविक हो जाता है। उन्होंने कहा प्रभु! इन कार्यों से मानव के द्वारा संस्कारों का जन्म नहीं होता है। संस्कारों का जन्म उस काल में होता है जबकि मानव उन विचारों पर जो इष्ट विचार हैं उन पर टिप्पणी करना प्रारम्भ कर देता है। टिप्पणी के साथ साथ उनमें घृणा होती है और घृणा के साथ ही में अभिमान होता है और अभिमान के साथ में अपनी करूणामयी नहीं होती तो उस मानव के द्वारा उसके संस्कार जन्म ले लेते हैं। वह आवागमन का एक मूल कारण बनता चला जाता है।

देखो, इन्दियों का निग्रह ही अहिंसा परमोधर्म कहलाता गया है। सर्पराज आ गए चरणों के द्वार पर और उनके जपन जापन की क्रियाएं प्रारम्भ हैं जैसा उनका निग्रह है। महर्षि पातञ्जली जी ने कहा है कि चित्त वृत्ति निरोधय चित्त की वृत्तियों को निरोध करने का नाम योग कहलाया गया है, उसी का जापन चल रहा है परन्तु कितना महान तपस्वी! मृगराज आ गएं उनके द्वारा, उनके जपन को श्रवण कर रहे हैं। ऐसे महापुरूषों को मैं हृदय से प्रशंसा करता हूँ। उन तपस्वियों का वेद का विचार था, अहिंसा परमोधर्म वाला विचार है उनके द्वारा सदैव रमण करता रहता था।

पूज्य महानन्द जी: मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा। इसको सोमरस का पान कराना चाहिए। बारह वर्ष के लिए मुझे सङ्कल्प करा दिया कि तुम सोमरस का पान करो। सोमरस क्या होता है? उसमें एक सुमेन नाम की औषधि होती है, सममुना नाम की औषध होती है, सेलखण्डा होती है, कोकजंघा होती है, सोमगागिनी होती है। नाना प्रकार की औषधियों का मानो अग्नि में तपा करके सोमरस बनाया जाता है। उसमें क्या प्रभाव होता है? यह मैं निर्णय करा देता हूँ, जो मुझे अनुभव हुआ है। उसमें यह होता है कि जो मन की गति है, जो संस्कारों को लाती है जो स्वप्न में मुझे सदैव बाध्य करती रही। उस समय अप्रतम ब्रह्म उसका पान कराने के पश्चात मेरे मन की गति संस्कारों की गति थी वह मन्द हो गई। मन्द हो जाने के पश्चात इसमें मेरी साधना में प्रवृत्ति हो गई।

पूज्यपाद गुरुदेवः हमारे ऋषियों ने कहा कि इन्द्रियों का रस लिया जाए। मानो इन्द्रियों का फेम का फेन बनाया जाए। ऐसा ऋषिजन कहते हैं परन्तु देखो इन्द्रियों का फेम क्या इन्द्रियों के विषयों को मन्थन करने के पश्चात जो जो इन्द्रियों में गुण हैं अथवा जो जो उनका विषय है। उन विषयों को एकत्रित करने वाला ही साधक योग में पारायण बन सकता है। इनके विषयों को एकत्रित करने के पश्चात जब रस बनाया जाता है। उस रस को जो योगी पान कर लेता है। वह मन और प्राण दोनों का निरोध करके मोक्ष को प्राप्त हो जाता है। हम इस प्रातःकाल की अमृत बेला में उस अपने प्यारे प्रभु का गुणगान गाते हुए वेद की प्रतिभा को जानते हुए हम प्रकृति के मन को विचारते हुए हम अपने ऊपर अनुशासन करने का प्रयास करें। क्योंकि जब तक हमारे जीवन में अपने ऊपर अनुशासन नहीं होगा तो योग में कदापि भी ऊँचे नहीं बन सकेंगे।

मेरी इन्द्रियों का जो विषय है। उससे संसार को दृष्टिपात करना है। चंचलता में नहीं जाना है। इसको विचारना है कि मेरी नेत्रों की ज्योति में से कितनी धाराओं को जन्म होता है, और धाराएं क्या क्या कार्य करती हैं, जब रजोगुणी प्रवृत्ति होती है उस समय नेत्रों की धारा में अशुद्धवाद होता। जब सतोगुणी होता है। जब रजोगुण होता है। तो उसमें कितना रजोगुण होता है, तो ऋषिजन कहते हैं जब सात्विक प्रवृत्ति रहती है जो ३००७ प्रकार की धाराओं का जन्म होता है। परन्तु जब रजोगुणी होती है तो ६५५२ प्रकार की तरंगों का जन्म होता है। और जब तमोगुण होता है। उस समय मुनिवरो! मानव का सुकृत हनन होने लगता है। तमोगुणी प्रवृत्ति में तमोगुणी जो नेत्रों की ज्योति है उसमें लगभग ९००० तरंगों का जन्म होता है और उससे मानव का सुकृत हनन हो जाता है। परिणाम क्या कि इस विषय को विचारना है। नेत्र जब सात्विक प्रवृत्ति में होते हैं नेत्रों की ज्योति को विचारता है। वह नेत्रों की ज्योति अग्नि की धाराएं हैं। उन अग्नि की धाराओं को हमें आन्तरिक जगत् में समेट लेना है।

तप के द्वारा चित्त की वृत्तियों का निरोध

सृष्टि के प्रारम्भ से ले करके, वर्तमान के काल तक नाना विज्ञानवेत्ता हुए हैं, परन्तु कोई विज्ञानवेत्ता ऐसा नही हुआ जो परमपिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान को सीमाबद्ध कर सके और क्योंकि वे सीमा से रहित है और इसीलिए वे सीमा में आने वाले नही हैं, इसीलिए हमारे यहाँ परमपिता परमात्मा की महती अथवा उसकी अनन्तमयी ज्ञान और विज्ञान की महिमा का सदैव गुणगान गाते रहते हैं। क्योंकि वह हमारा पुरोहित है, और पराविद्या को देने वाला हैं। इसीलिए हम परमपिता परमात्मा की महती का वर्णन करते रहते हैं, वह हमारा पुरोहित कहलाता रहता है। वेदमन्त्र हमें कुछ प्रेरित कर रहा हैं, क्योंकि मानव परम्परागतों से ही, प्रेरणा का स्रोत रहा है, और प्रेरणा को प्राप्त करता रहता हैं, तो आओ, वेदमन्त्र हमारा कहता है, वर्णनं ब्रव्हा कृतं देवाः क्या वह परमपिता रत्त प्रहा मानो वह सर्वज्ञ हैं, और उसकी सर्वज्ञता मुनिवरों! देखो, एक एक कण कण में व्याप्त हैं वह मानव देखो, ऐसे ओत प्रोत हो रहा है जैसे अन्तरिक्ष में मानो जितने लोक लोकान्तर है वह सब एक उस ब्रह्म सूत्र में पिरोए हुए से दृष्टिपात आते हैं, वह जो ब्रह्माण्ड है, अनन्तमयी ब्रह्माण्ड का वह स्वामीतव करने वाला है। मेरे प्यारे! मुझे वह काल पुनः से स्मरण आ रहा है। जब बेटा! बालक नाचिकेता यमाचार्य के द्वार पर आए, अपने में कुछ प्रश्न करना चाहता है, और बाल्य नाचिकेता ने कहा हे प्रभु! हम स्वर्ग की कामना करना चाहते हैं स्वर्ग में जाना चाहते हैं? तो मेरे प्यारे! देखो, यमाचार्य ने कहा ब्रह्मचारी तुम विराजमान हो जाओ, और शान्त की मुद्रा में मुद्रित हो करके, तुम मेरे वाक्यों को श्रवण करो। आज तुम देखो, स्वर्ग में जाना चाहते हो, तो स्वर्ग उसे कहते हैं, जहाँ मानव के गृह में गृह का संचालन होता हो, वह गृह स्वर्ग कहा जाता हैं। और विद्यालयों में जब ब्रह्मचारी और आचार्य दोनों विद्यमान हो करके, और वह अपने में उद्गीत गाते है, ब्रह्म की गाथा का वर्णन करते रहे हैं, तो वह स्वर्ग कहलाता हैं।

उन्होंने कहा कि तीन प्रकार की अग्नि हमारे समीप रहती है। एक अग्नि वह है जिसमें ब्रह्मचारी तपता है, और द्वितीय अग्नि का नाम जिसमे गृहाश्रम तपा करता हैं। जैसे माता पिता पति पत्नी गृह में प्रवेश होते ही उनका जीवन तपों में प्रारम्भ होना है देखो, याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने कहा, तपं ब्रह्मा तपं ब्रव्हे राष्ट्रदं ब्रव्हा कृतं देवत्वां तपः कि ये संसार मानो तपोमय रहता हैं और बिना तप के मानव का जीवन प्रियता को प्राप्त नही होता। विचार आता है कि तप किसे कहते हैं? मेरे प्यारे! देखो, उस समय बालक नचिकेता ने यमाचार्य से कहा हे ब्रह्मचारी! ये संसार सर्वत्र मानो एक तपोमय निहित रहता है वायु वेग में तपायमान है, गतिवान बना रही हैं अग्नि अपनें में मानो देखो, तेजोमयी है, व तेजवान बना रही हैं, और वह जो तरलतव है वह तरल ब्रहे वह मानो देखो, आपो कहलाता हैं आपोमयी ज्योतिवान बना रहा है। मेरे प्यारे! देखो, प्रत्येक स्वरूप अपने में अपनेपन का ही भान कराता रहता है अपने में मानो वह उसी में प्रतिष्ठित हो जाता हैं तो विचार आता रहता हैं यमाचार्य ने कहा हे नाचिकेत! मानो तुम तीनो प्रकार की अग्नि का पूजन करो और तपोमय रहने के लिए सदैव तुम तत्पर रहो, क्योंकि संसार में प्रत्येक मानव तपायमान है, प्रत्येक मेरी पुत्री तपायमान रहती हैं परन्तु तपने के पश्चात मेरी पुत्री तपोमयी हो जाती हैं।

राष्ट्र जब ऊँचा बनता हैं जब राजा स्वयं तपस्वी होता हैं मानो देखो, मैं लंका को विजय करके आया हूँ और लंका में मैने नाना प्रकार की प्रतिष्ठ प्रहा मानो देखो, लंका में मुझे रजोगुण भी आया है, तमोगुण भी आया है, रजोगुण, तमोगुण मेरे अन्तःकरण में देखो, ग्रहण किए रहता हैं। हे प्रभु! मेरी इच्छा ये है कि मैं तपस्या करने के लिए जाऊं, और मैं बारह वर्ष के पश्चात अपने राष्ट्र को उन्नत बना सकता हूँ। क्योंकि यदि राजा मे तप नहीं हैं, तमोगुण से सना उसका अन्तर्हृदय है, वह हृदयग्राही नही होता हैं पवित्र नही होता हैं।

तो मेरे प्यारे! देखो, जब उन्होंने महाराज शिव को सम्बोधित हो करके कहा, क्योंकि महाराज! शिव स्वयं तपस्वी रहते थे, और वे तपश्चर में रमण करके, अपने राष्ट्र को उन्नत बनाते थे इसी प्रकार राम भी यही चाहते थे, कि मैं राष्ट्र को ऊँचा बनाऊं।

तो मेरे प्यारे! देखो, मुझे स्मरण आता रहता है, भरत जी से कहा हे भरत! तुम अपने राष्ट्र को भोगो, उन्होंने कहा प्रभु! मैं इसको भोग नही सकता, ये भोगवाद की कोई वस्तु नही हैं यहाँ तो मानव को अपने कर्तव्य का पालन करना है, और राजा यदि कर्तव्यवादी नही बनेगा तो भगवन! देखो, राष्ट्रीयता नही कहलाती इसीलिए हे भरत! ब्रहे तुम स्वयं तपस्वी बनो। और भरत ने भी कहा प्रभु! आप तप के लिए जा रहे हैं, और मुझे राष्ट्र के लिए बाध्य कर रहे हैं, ये मेरे विचार में नही आ रहा हैं। हे भरत! वह ब्राह्मण जो होता हैं वह बिना तप और देखो, स्वर संगम के बिना ब्राह्मण ऊँचा नही बनता, और क्षत्रिय जब ऊँचा बनता है, जब वह अपने रजोगुण में तमोगुण की मानो देखो, वृत्तियाँ न आने दे। वह रजोगुण न्याय का वृत कहलाता हैं, उसके गर्भ में सत्य होता है, इसीलिए सत्य को ले करके ही तुम मानो देखो, अपने राष्ट्र को प्राप्त कर पालन करो। बेटा! मुझे ऐसा स्मरण आ रहा है, राम तपस्या के लिए चले गएं और वह भंयकर वनों में बेटा! देखो, भ्रमण करते हुए जब वनों में पंहुचे तो वहाँ वैश्म्पायन मुनि का दर्शन हुआ और देखो, उनके समीप विद्यमान हो गएं राम ने कहा प्रभु! मैं तप करने आया हूँ, मैं तप की मीमांसा को नहीं जान पा रहा हूँ, तप किसे कहते हैं? मेरे पुत्रों! देखो, महर्षि वैशम्पायन बोले हे राम! तुम्हें ये प्रतीत नही है, कि राजनं ब्रहे तपः ये तप किसे कहा जाता है। आहार का पवित्र सेवन करने का नाम तप है। क्योंकि उसी से हमारी प्रवृत्तियों को निर्माण होता हैं। और यदि अन्नाद उसका पवित्र है तो वहाँ प्रवृत्ति का ऊर्ध्वा में जन्म हो करके और मानव अपने में देखो, सतोगुण बन करके अपने सत में आधारित हो जाता है।

मेरे प्यारे! देखो, ऋषि ने जब ये कहा कि तुम तप करो। परन्तु तप कहते हैं इन्द्रियों के साकल्यों को जानने का नाम वही तप है जो इन्द्रियों के साकल्यों को जानता है अथवा इन्द्रियों के विषयों को जान करके अपना साकल्य बना करके बेटा! देखो, ज्ञान और उपार्जन करता है और ज्ञान का उपार्जन करके मानो देखो, हृदय रूपी यज्ञशाला में वह हूत कर रहा हैं प्रहूत कर रहा हैं वह भव्यता को प्राप्त हो रहा हैं।

विचार आता रहता है कि जब राम से ये वर्णन कराया वैशम्पायन ने कि तप ये है तो उन्होंने ये स्वीकार कर लिया। बेटा! देखो, वह कहीं खेचरी मुद्रा में चले जाते, कहीं प्राणायाम करने लगते। मुझे स्मरण हे छह माह तक उन्होंने देखो, वायुमण्डल के प्राण के संचय से बेटा! देखो, पोषक तत्त्वों को ग्रहण किया। और जब जल की इच्छा होती है योगेश्वर को तो बेटा! वहाँ देखो, वह खेचरी मुद्रा से मुनिवरों! शीतली प्राणायाम करता हुआ जल की तृप्ति कर लेता हैं।

मेरे प्यारे! देखो, योग साधना में जब मानव प्रवेश होता हैं तो साधक ये जानता है कि मुझे जितनी भी इन्द्रियों का साकल्य है नेत्रों साकल्य है, वह रूप हैं और देखो, श्रोत्रों का साकल्य शब्द है, और वाणी का, रसना का साकल्य मानो देखो, रस है, षट रस कहलाते हैं और त्वचा का जो वह मानो देखो, साकल्य है वह प्रेम है तो इसी प्रकार मेरे पुत्रों! देखो, घ्राण का जो मानो विषय है साकल्य है वह मुनिवरों! देखो, सुगन्ध कहलाती हैं तो इन सब साकल्यों को एकत्रित करके साधक मेरे प्यारे! देखो, अमृतं ब्रह्मणा वर्णस्सुतम् वह मेरे प्यारे! देखो, अपने हृदय रूपी यज्ञशाला में याग करता है और वह हृदय को पवित्र बना लेता हैं।

आओ, मेरे पुत्रों! मैं इस सम्बन्ध में विशेष चर्चा नही देने आया हूँ विचार विनिमय केवल ये कि राम देखो, गायत्री छन्दों का पठन पाठन करने लगे, वाणी को पवित्र बनाने के लिए जैसे यज्ञमान अपनी यज्ञशाला में विद्यमान हो करके स्वाहा स्वाहा की ध्वनि से ध्वनित हो जाता हैं अन्तरिक्ष में अपनी वाणी को प्रसारित कर देता हैं मेरे प्यारे! उसी प्रकार राम ने गायत्री छन्दों का पठन पाठन किया और मुनिवरों! देखो, महर्षि वैशम्पायन से समय समय पर देखो, अन्न को ग्रहण करते रहे।

तो विचार आता रहता हैं मुनिवरों! देखो, अमृतं ब्रव्हे इसीलिए बालक नाचिकेता से आचार्य ने कहा हे नाचिकेता! यदि तुम्हें स्वर्ग को लाना है तो माता पिता को गायत्री छन्दों का प्रातःकालीन पठन पाठन करते हुए उनके अङ्ग संग रहने वाले जो बाल्य बालिका हैं, उनको श्रवण करते रहते हैं और जो माता पिता के सुन्दर विचार हैं तो देखो, बाल्यों के भी विचार सुन्दर बन जाते हैं वे भव्यता को प्राप्त हो करके अपने में रत्त हो जाते हैं।

मेरे पुत्रों! देखो, मुझे वह काल स्मरण आता रहता हैं जब भगवान राम ने इस प्रकार का बारह वर्ष का तप किया। उस अन्न को ग्रहण करते थे जिस अन्न में किसी का अधिकार नही था इसीलिए ऋषि मुनि को विवेक हो जाता है तो बेटा! उन्हें विवेक हो जाता हैं और विवेकी जो पुरूष होता हैं मानो उसमे विडम्बना नही होती और वह विडम्बना से पार होता हैं तो इसीलिए विडम्बिनित नही होना चाहिए। भगवान राम ने बेटा! देखो, बारह वर्ष का तप करने के पश्चात उन्होंने मेरे प्यारे! देखो, भयंकर वन को त्यागा। वह स्थली त्यागी जहाँ एक दूसरा एक दूसरे के शब्द एक दूसरे को मानो मानव को अपने को रत्त कर रहा हैं।

ये कैसा अनुपम जगत है पुत्रों! कैसी अनुपम धारणा है अरे, नाना प्रकार की मालाएं बनती है परन्तु माला भी सूत्र में पिरोई हुई हैं जैसे हमारा जीवन हैं मानो एक एक परमाणु मनका बन करके ब्रह्म सूत्र में पिरोया हुआ हैं या उसे आत्मसूत्र कह सकते हैं और उसमें पिरोते पिरोते बेटा! मानव कहाँ चला जाता हैं वाह रे मेरे प्यारे! इतना ऊर्ध्वा में साधक बन जाता है। वह साधना में परणित हो होता हुआ मुनिवरों! देखो, नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों की उड़ानें उड़ने लगता हैं। राम जैसे सखा बारह बारह वर्षों तक मुनिवरों! देखो, रजोगुण, तमोगुण को शान्त करने में लगे रहेंगें मेरे पुत्रों! देखो, वह राष्ट्र पवित्रता को प्राप्त होता हैं।

सविता याग के द्वारा वायुमण्डल की पवित्रता

तो मुनिवरों! देखो, वह साधना के लिए सविता देव की उपासना करने लगे यज्ञमान कहता है कि हे सविता! देव! जिस आसन पर मैं वास करता हूँ, वह आसन मेरा हिंसा से रहित हो जाए, वह आसन मानो मैं मन, कर्म वचन से किसी प्रकार की हिंसा न करूं, मानो देखो, हिंसा का एक परमाणु भी न रह पाए। मेरे आश्रम को मानो मेरी वह तरंगे न छू पाएं तो ऐसा मुझे स्मरण आता रहता है, मुनिवरों! महर्षि लोमश जी ने जब ये उपदेश दिया तो कागभुषुण्ड जी अपने में याग करने लगे जब वो सविता देव के याग में परणित हो गए, सविता देव की उपासना करने लगे तो मुनिवरों! देखो, जहां तक उनकी वाणी जा रही थी, वाणी का वाक गमन कर रहा था, तो मुनिवरों! देखो, निकटतम आसन रहने वाला देखो, एक विद्यालय था, वहां महर्षि श्वेतकेतु रहते थे तो श्वेतकेतु के यहां से मुनिवरों! देखो, वह ब्रह्मचारियों के द्वारा वो अहिंसा देखो, विचार देखो, जब

तरंगों में प्रवेश होने लगे तो जहां वो कागभुषुण्ड जी के आश्रम में वाणी जा रही थी तो वहां से वो तरंगें मानो उन तरंगों ने ऐसा गृहत किया, मुनिवरों! देखो, वह तरंगे स्वतः ही विद्यालय में प्रवेश हो गई। तो मेरे प्यारे! देखो, इसीलिए विद्यालय ऐसां ब्रह्मा देखो, आचार्य की वो सविता देव की याग के द्वारा वो जो तरंगे होती हैं, मानो देखो, मन मस्तिष्क जब एकाग्र होता है, और मन की तरंगों में जब तरंगे पवित्र होती हैं। तो जैसे विद्युत मुनिवरों! देखो, जैसे आगे शचि में प्रवेश हो जाती है, मुनिवरों! देखो, इसी प्रकार देखो, तरंगें भी उन्हीं तरंगों को प्राप्त करती रहती हैं। जहां से उन तरंगों का प्रादुर्भाव हुआ था तो कागभुषुण्ड जी जब इस प्रकार याग कर रहे थे, तो कहीं से मानो भ्रमण करते हुए मेरे पुरातन काल में ये वाक तुम्हें प्रगट भी किया कहीं से मुनिवरों! देखो, श्वेत ब्रह्मचारी भ्रमण करते हुए, जैसे याग कर रहे थे जैसे मानो याग में हूत करने लगे जब हूत करने लगे तो जैसे स्वाहा का उदगीत गाया जाने लगा तो आन्तरिक जो विचार थे, वे विचार स्वाहा के साथ में अग्नि की धाराओं पर जब विद्यमान हुए तो मानो देखो, उस आचार्य को कागभुषुण्ड जी को आह्वान कर रही हैं। वो तरंगे की जो देखो, ये हूत कर रहा है। ये हूत करता है, उसके हिंसक विचार बन गए हैं। ये तमोगुणी विचार हैं, इसके ये मानो देखो, कहीं सतोगुणी भावना को नष्ट कर रहा है, तो उसी समय मुनिवरों! देखो, कागभुषुण्ड जी अपने वेदमन्त्र सविता देव के शान्त कर दिए, और वे बोले नतमस्तिष्क हो करके हे आचार्य! तुम ये जो मानो मेरे याग में तुम्हारा सम्मलित होना है ये वास्तव में देखो, प्रियता नही हैं। ये प्रीति युक्त नहीं हैं। उन्होंने कहा प्रभु! ऐसा क्यों उन्होंने कहा कि मुझे ये आह्वान हो रहा है कि तुम्हारे विचार हिंसक बन रहे हैं तुम किसी को दण्डित करके आए हो, उन्होंने कहा हां प्रभु! ये तो है। उन्होंने कहा मुझे वे तरंगे मेरे अन्तःकरण को स्पर्श कर रही हैं, इसीलिए तरंगों में, तरंगों का जहां मिलान होता है, वही तरंगे मानो देखो, उसकी प्रतिभा में निहित हो जाती हैं, मैं अपनी साधना के लिए, आश्रम में मानो इस प्रकार का याग कर रहा हूँ, मैं ये सविता देव प्रभु से प्रार्थना कर रहा हूँ, कि मेरे आश्रम में कोई तरंग ऐसी अशुद्ध न आ जाए, जिससे उन तरंगों के द्वारा प्रायः मेरा विनाश अनिष्ट हो जाए और मैं अनिष्टता को प्राप्त हो करके, मैं अपने में अपनेपन को न विचार सकूं। मेरे प्यारे! देखो, कागभुषुण्ड जी ने याग शान्त कर दिया, और देखो, वह ऋषि वहां से उन्होंने नमस्कार करके, नमः हो करके वहां से ये स्वीकार करके कि वास्तव में मैंने त्रुटियां की हैं और मैं मानो देखो, मैं इसका क्षमा का पात्र हूँ। तो मुनिवरों! देखो, वहां से वो गमन करते हैं, और भ्रमण करके अपने आश्रम में जा पंहुचे, कागभुषुण्ड जी मानो देखो, इतने में दोनों लोमश के आश्रम में जा पंहुचें, और लोमश मुनि से कहा भगवन! मेरा याग तो मानो भ्रष्ट पथ हो गया है। उन्होंने कहा ऐसा क्यों उन्होंने कहा देखो, ऋषि वृत्तिका का आगमन हो गया था और उन्होंने तमोगुण की तरंगों को वहां प्रसारित किया, उन्होंने लोमश जी ने कहा अरे, तुम्हारा तप ही क्या रहा? तुम्हारा सविता देव क्या है? जो मानो देखो, उनकी पाप तरंगों को वह दूरी न कर सकी, उन्होंने कहा देखो, प्रभु! ये तरङ्गे मानो देखो, मेरे अन्तःकरण को मानो उन्होंने स्पर्श किया है, उन्होंने कहा जाओ सविता की उपासना करो। मेरे प्यारे! वो सविता देवता का पुनः से याग प्रारम्भ करने लगे। उसमें समिधा भी, इसी प्रकार का साकल्य भी उसी प्रकार जिसे चरू कहते हैं, जिससे मानो साकल्य कहते हैं, और सङ्कल्प भी उसी प्रकार का होना चाहिए। मानो होतागण उसमें दूषित नही होने चाहिए। मेरे प्यारे! देखो, वो सविता देव पुनः से प्रगट हो गया। तो मेरे प्यारे! देखो, विचार आता रहता है, मैं इस सम्बन्ध में विशेष चर्चा प्रगट नही करूंगा। केवल ये तो विचार है क्योंकि सविता देव का अभिप्राय ये है कि हमारा जो देवताओं का धिपति है, वे सविता कहलाता है, मेरे प्यारे! देखो, मन की जितनी धाराएं हैं उनका जो नेतृत्व करने वाला है वह भी सविता देव कहलाता है इसीलिए तुम सविता की उपासना करो, मेरे प्यारे! देखो, कागभुषुण्ड जी ने लगभग मुनिवरों! देखो, एक सौ चौरनवें वर्ष तक उन्होंने लोमश जी के कथनानुसार उन्हीं के विचार, आज्ञा पा करके, उन्होंने इस प्रकार का तप किया। तप करने से उन्हें ये हो गया क्या मुनिवरों! देखो, तरंगे भ्रमण कर रही हैं और तरंगे जैसे जा रही हैं, उनके नेत्रों की ज्योति इतनी तीव्र बन गई हृदय का जब देखो, हृदय में आश्वान प्रकार का निर्माणित हो गया क्या मुनिवरों! देखो, तरंगे जा रही है। नेत्रों के समीप उन तरंगों में ये जान लिया जाता था इन तरंगों में किस प्रकार की तरंगें हैं, किस प्रकार का इसमें परमाणु और तरंगें भ्रमण कर रही हैं मेरे प्यारे! देखो, इस प्रकार की तरंगों को जान लेते थे विचार आता रहता है बेटा! देखो, वे ब्रह्मणे व्रतं वे शान्त मुद्रा में देखो, विद्यमान थे प्राण और मन के ऊपर मानो देखो, मन को उन्होंने सविता देव से उन्होंने जकड दिया, वे सविता देव के बन्धन में बन्धन सूत्र जैसे अपने में देखो, सूत्रित हो जाते है। जैसे यज्ञमान के मङ्गलसूत्र में देखो, आचार्य उन्हें देखो,मङ्गल सूत्र में देखो, सूत्रित कर देता है, इसी प्रकार मुनिवरों! देखो, वे अपने में सविता देव से सूत्रित हो गए, वे इस सूत्र में उनका मन मस्तिष्क मानो उसमें ओत प्रोत हो गया। हे मानव! तू याज्ञिक बन और तू प्रत्येक दशा में अपनी आत्मा के अनुकूल क्रियाकलाप करता रह। वह तेरा सर्वोपरि एक याग है। हूत करना और वायुमण्डल को पवित्र बनाना, देवताओं को प्रदान करना देवताओं के लोक में क्योंकि हम रत्त रहते हैं।

104. मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षणां॥ योग दर्शन समाधिपाद ३३

मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम्॥ योग दर्शन समाधिपाद ३३

स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज

शब्दार्थ: मैत्री , करुणा , मुदिता , उपेक्षणाम् , सुख , दुःख , पुण्य , अपुण्य , विषयाणाम् , भावनातः , चित्त-प्रसादनम्॥

सूत्रार्थ: सुख - मित्रता। दुःख - दया। पुण्य - आनन्द। अपुण्य - उपेक्षा। सुखी, दुःखी, पुण्यात्मा और पापात्मा के विषयों में क्रमशः मित्रता, दया, आनंद और उपेक्षा की भावना से चित्त प्रसन्न और स्वच्छ होता है।

भावार्थ: मेरे इस मित्र को भले प्रकार सुख बना रहे, इस प्रकार चित्त को मैत्री आदि के तत्पर करने का नाम "भावना" है, सुखी पुरूषों में मैत्री की भावना, इस दुःखी का दुःख कैसे निवृत्त होगा, इस प्रकार दुःखी पुरूषों में दया की भावना, धर्मात्मा जीवों के धर्म को देखकर "हां इसने शुभकर्म किया" इस प्रकार धार्मिक जीवों में मुदिता की भावना, अधर्मी पुरूषों के पापाचरण को देखकर पाप की उपेक्षा से उनमें उदासीनता की भावना करनी चाहिये। इससे चित्त के **ईर्ष्या** आदि मल निवृत्त हो जाते हैं अर्थात् "मैत्री भावना" से ईर्षा, "करूणा भावना" से अपकार की इच्छा, "मुदिता" ओर "उपेक्षा" भावना से क्रोध रूप मल की निवृत्ति हो जाती है, इन ईर्षा आदि मलों की निवृत्ति हो जाने से निर्मल हुआ चित्त ईश्वर प्रणिधान में शीघ्र ही स्थिर होता है॥ तात्पर्य्य यह है कि अभ्यास से शुद्ध हुआ चित्त ईश्वरप्रणिधान के योग्य होजाता है॥ अब पूर्वोक्त मलों से रहित चित्त की स्थिति का अन्य उपाय कथन करते हैं।

शब्दार्थ (मैत्री - करुणा - मुदिता - उपेक्षाणाम्) मित्रता, दया, प्रसन्नता, उदासीनता की (सुख-दुःख-पुण्य-अपुण्य - विषयाणाम्) सुख - दुःख - पुण्य - अपुण्य विषय वालों में (भावनात :) भावना के अनुष्ठान से (चित्त - प्रसादनम्) चित्त, प्रसन्न और एकाग्र होता है। स्वामी सत्यपति

सूत्रार्थ: - सुख - दुःख - पुण्य - अपुण्य विषय वाले व्यक्तियों में क्रमशः मित्रता, दया, प्रसन्नता, उदासीनता की भावना के अनुष्ठान से चित्त की प्रसन्नता और एकाग्रता होती है।

व्यास भाष्य संस्कृत: तत्र सर्वप्राणिषु सुखसंभोगापन्नेषु मैत्रीं भावयेत्, दुःखितेषु करुणाम्, पुण्यात्मकेषु मुदिताम्, अपुण्यशीलेषूपेक्षाम्। एवमस्य भावयतः शुक्लो धर्म उपजायते। ततश्च चित्तं प्रसीदति, प्रसन्नमेकाग्रं स्थितिपदं लभते॥

व्यास भाष्य देवनागरी: उन भावनाओं में से सुख भोगयुक्त सब प्राणियों में मैत्री की, दुःखी प्राणियों में करुणा की, पुण्यात्माओं में हर्ष की और अपुण्यत्माओं में उपेक्षा की भावना करनी चाहिए। इस प्रकार भावना करने वाले उपासक के आत्मा में शुद्ध धर्म उत्पन्न होता है। उससे चित्त प्रसन्न होता है। प्रसन्न चित्त एकाग्र होकर स्थिति पद को प्राप्त होता है॥

योग प्रकाश: इस सूत्र में चित्त को प्रसन्न करने के उपाय बतलाये हैं। योगाभ्यासी व्यवहार के समय में अनेक प्रकार के मनुष्यों के सम्पर्क में आता है। यदि वह उनके साथ व्यवहार करना नहीं जानता तो उसकी मनःस्थिति योगाभ्यास के अनुकूल नहीं रहती। इसलिए सूत्रकार ने साधक का किसके साथ कैसा व्यवहार हो यह उपदेश किया। संसार में अनेक प्रकार के मनुष्य हैं। कोई धार्मिक और सुखी है, कोई धार्मिक होते हुए भी सुख साधनों की न्यूनता के कारण दुःखी है। कोई योगाभ्यासी पुण्यात्मा है। कोई अन्यायकारी अपुण्यात्मा है। इन सबके साथ ऐसा व्यवहार करना चाहिये कि व्यक्ति का मन प्रसन्न बना रहे। जो सुख साधन सम्पन्न और धार्मिक हैं, उनके साथ मित्रता का व्यवहार करें। क्योंकि कभी-कभी व्यक्ति सुख साधन सम्पन्न मनुष्यों को देखकर उनसे द्वेष करने लगता है कि ये इतने सम्पन्न क्यों हो गये हैं, इनकी हानि होनी चाहिए। इससे योगाभ्यासी का चित्त खिन्न हो जाता है। खिन्न होने से उसमें एकाग्रता नहीं आ पाती। यदि वह सुख सम्पन्न मनुष्यों को देखकर उनसे मित्रता का व्यवहार करता है तो चित्त प्रसन्न होता है और उससे ईर्ष्या- द्वेष दूर हो जाते हैं। जब व्यक्ति दुःखियों को देखता है तो उनके प्रति घृणा उत्पन्न होती है। घृणा करने से चित्त की प्रसन्नता भंग हो जाती है और दुःखियों का उपकार करना भी छूट जाता है। यदि योगाभ्यासी दुःखियों पर दया करता है तो उनके प्रति प्रेम उत्पन्न होता है और वह उन दुःखियों की तन, मन और धन से सहायता करता है। सहायता करने से उनका दुःख दूर होता है और सुख की प्राप्ति होती है। इससे साधक के मन में घृणा उत्पन्न नहीं होती किन्तु उल्लास होता है। योगाभ्यासी पुण्यात्माओं को देखता हैं तो उनके प्रति द्वेष उत्पन्न हो सकता है। जब उनका सम्मान होता है तब उनके सम्मान को सहन नहीं कर पाता, उनसे द्वेष करने लगता है। द्वेष से चित्त में एकाग्रता नहीं हो पाती। इस द्वेष को दूर करने के लिए उनके प्रति हर्ष की भावना करनी चाहिए इससे योगाभ्यासी के मन में द्वेष उत्पन्न नहीं होता किन्तु हर्ष उत्पन्न होता है। अपुण्यात्माओं को देखकर न राग और न द्वेष करना चाहिए किन्तु उपेक्षा करनी चाहिये। क्योंकि राग करने से अधर्माचरण में रुचि उत्पन्न होती है और उस अपुण्यात्मा जैसा व्यक्ति का जीवन बन जाता है। द्वेष करने से झगड़े उत्पन्न होते हैं जिससे योगाभ्यासी योग मार्ग को छोड़कर लड़ाई-झगड़ों में लग जाता है। यहाँ पर यह बात ध्यान देने योग्य है कि अपुण्यात्माओं के विषय में भी यह इच्छा रखनी चाहिए कि ये भी अधर्माचरण को छोड़कर धर्माचरण करें जिससे इनका दुःख दूर हो और ये सुखसम्पन्न हो जाएँ। चित्त को प्रसन्न करने के लिए यह भी उपाय है कि संसार के मनुष्य आदि सभी प्राणी ईश्वर के पुत्र हैं। उन सबके साथ आत्मवत् व्यवहार करना चाहिये। क्योंकि ईश्वर हमारी माता, पिता, आचार्य, उपास्य, राजा है और वह हम सबका कल्याण करना चाहता है। योगाभ्यासी यह निश्चय करे कि मैं भी सबका कल्याण करने का पूर्ण प्रयास करूँगा। ऐसा विचार और आचरण करने से चित्त प्रसन्न होता है। इससे चित्त को एकाग्र करने में सफलता मिलती है॥

राजर्षि भोजदेव

राजर्षि भोजदेव वृत्तिः "मैत्री सौहार्दम्। करुणा कृपा। मुदिता हर्षः। उपेक्षौदासीन्यम्। एता यथाक्रमं सुखितेषु दुःखितेषु पुण्यवत्सु अपुण्यवत्सु च विभावयेत्। तथा हि सुखितेषु साधु एषां सुखित्वमिति मैत्रीं कुर्यान्न तु ईर्ष्याम्। दुःखितेषु कथं नु नामैषां दुःखनिवृत्तिः स्यादिति कृपामेव कुर्यान्न ताटस्थ्यम्। पुण्यवत्सु पुण्यानुमोदनेन हर्षमेव कुर्यान्न तु किमेते पुण्यवन्त इति विद्वेषम्। अपुण्यवत्सु चौदासीन्यमेव भावयेन्नानुमोदनं न वा द्वेषम्। सूत्रे सुखदुःखादिशब्दैस्तद्वन्तः प्रतिपादिताः। तदेवं मैत्र्यादिपरिकर्मणा चित्ते प्रसीदति सुखेन समाधेराविर्भावो भवति। परिकर्म चैतद्बाह्यं कर्म। यथा गणिते मिश्रकादिव्यवहारो गणितनिष्पत्तये संकलितादिकर्मोपकारकत्वेन प्रधानकर्मनिष्पत्तये भवति एवं द्वेषरागादिप्रतिपक्षभूतमैत्र्यादिभावनया समुत्पादितप्रसादं चित्तं संप्रज्ञातादिसमाधियोग्यं संपद्यते। रागद्वेषावेव मुख्यतया विक्षेपमुत्पादयतः। तौ चेत्समूलमुन्मूलितौ स्यातां तदा प्रसन्नत्वान्मनसो भवत्येकाग्रता।

राजर्षि भोजदेव वृत्तिः भाष्यः स्वामी विज्ञानाश्रमजीः (मैत्री सौहार्दम्) मैत्री सुहदय भाव को कहते हैं, बिना उपकार के मित्रता करने को सुहदय भाव कहते हैं। (करुणा कृपा) करुणा का अर्थ कृपा है। (मुदिता हर्षः) मुदिता हर्ष को कहते हैं। (उपेक्षौदा सीन्यम्) उपेक्षा उदासीनता को कहते हैं (एता यथाक्रमं) यह सब यथाक्रम (सुखितेषु दुःखितेषु पुण्यवत्सु अपुण्यवत्सु च विभावयेत्) सुखियों, दुःखियों, पुण्यात्मा, पुण्य रहित पुरुषों में

भावना करे। (तथा हि) उसी प्रकार (सुखितेषु साधु एषां सुखित्यम्) सुखी पुरुषों में इन पुरुषों को सुख है, बहुत अच्छा है (इति मैत्रीं कुर्या तु ईर्ष्याम्) इस भाव से प्रिति करे किन्तु ईर्ष्या न करे। (दुःखितेषु कथं नु नामैषां दुःख-निवृत्तिः स्यादिति कृपामेव कुर्यान ताटस्थ्यम्) किसी प्रकार इन के दुःख की निवृत्ति हो इस प्रकार कृपा भाव ही करे, किन्तु उसके उपायों में स्वयं न फँस जावे। (पुण्यवत्सु पुण्यानुमोदनेन हर्षमेव कुर्यान्न तु किमेते पुण्यवन्त इति विद्वेषम्) पुण्यात्माओं में पुण्य की प्रसंशा करते हुए प्रसन्न होवे, किन्तु यह क्या पुण्य करने वाले हैं, अर्थात् कुछ नहीं इस प्रकार द्वेष न करे। (अपुण्यवत्सु चौदासीन्यमेव भावयेवानुमोदनं न वा द्वेषम्) पापियों में उदासीन भाव रहे, उन के कर्मों का न अनुमोदन करे न विरोध करे। (सूत्रे सुख दुःखादिशब्देस्तद्वन्तः प्रतिपादिताः) सूत्र में सुख दुःखादि शब्दों से सुख दुःख वाले का प्रतिपादन किया है। (तदेवं मैत्र्यादिपरिकर्मणा चित्ते प्रसीदति) इस प्रकार मैत्री आदि कर्मो से चित्त प्रसन्न होता और (सुखेन समाधिराविर्भावो भवति) सुगमता से समाधि का लाभ होता है। (परिकर्म चैतद्वाझं कर्म) यह मैत्री आदि का परिकर्म तो बाह्य साधन है। (यथा गणिते मिश्रकादिव्यवहारो गणितनिष्पत्तये) जैसे गणित विद्या में जोड़ आदि का व्यवहार गणित निर्णय के लिये है। (संकलितादिकर्मोपकारकत्वेन प्रधानकर्मनिष्पत्तये भवति) वह जोड़ादि कर्म उपकारक भाव से प्रधान कर्म की सिद्धि के लिये होते हैं। (एवं द्वेषरागादिप्रतिपक्षभूतमैत्र्यादिभावनया समुत्पादितप्रसादं चित्तं संप्रज्ञातादिसमाधियोग्यं संपद्यते) इस प्रकार मैत्री आदि भावना द्वारा उत्पन्न हुई प्रसन्नता से द्वेष रागादि शत्रुओं का बाध होने पर चित्त संप्रज्ञातादि समाधि की योग्यता को प्राप्त होता है। (रागद्वेषावेव मुख्य तया विक्षेपमुत्पादयतः) राग द्वेष दोनों मुख्य रूप से विक्षेप को उत्पन्न करते हैं। (तौ चेत्समूलमुन्मूलितौ स्यातां) यदि राग द्वेष दोनों मूल से निर्मूल हो जावें (तदा प्रसन्नत्वान्मनसो भवत्येकाग्रता) तब प्रसन्नता बाला होने से मन एकाग्र हो जाता है॥

105. संसार में चार प्रकार के प्राणी

व्याख्याः शृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज-संसार में चार प्रकार के प्राणी

संसार में प्रभु के मार्ग के लिए चार प्रकार के प्राणी होते हैं। एक दुःखित प्राणी होता है द्वितीय जिज्ञासु होता है और तृतीय स्वार्थी होता है और चतुर्थ ज्ञानी होता है। ये चार प्रकार के प्राणी हैं जो प्रभु के मार्ग में कुछ गति करना चाहते हैं। सबसे प्रथम दुःखित होता है वह देवी सम्प्रदा से असुर सम्प्रदा को मानो दोनो का मिलान करना चाहते हैं और वह दोनो को समन्वय करते करतें वह दुःखित हो जाते हैं परन्तु हो नहीं पाता। अब वह प्रभु की आराधना करते हैं हे प्रभु! इस संसार से हमें मुक्त कर, हमें इस संसार से उदासीन बना, हम इस संसार के जो नाना प्रकार जो विडम्बनावाद है, एक मानव दूसरे प्राणी से दुःखित होता रहता है, उसके कर्तव्यवाद के कारण एक राष्ट्र में प्राणी रहता है उससे राष्ट्रीयता से दुःखित होता रहता मानो समाज में जो वातावरण है, समाज में जो दुर्व्यवहार है उन्हीं से मानव दुःखित रहता है। अब मुनिवरों! देखो, यह जो व्यवहार है यह जो जगत है जिसमें मानव जब दुःखित होता रहता है जब उसे कोई मार्ग उसे प्राप्त नहीं होता है तो वह प्रभु से आराधना करता है कि प्रभु! मैं दुःखित हूँ और मुनिवरों! मैं नहीं चाहता कि यह संसार मेरे समीप आए अब मुझे भगवन! उदासीन बनाईए, और इस जगत से मुक्त कराईए तो बेटा! वह विमुक्त बनने की प्रभु से आराधना करता है वह प्राणी दुःखित होता है वह मानो दुःखित होता है, क्योंकि वह बाह्य जगत को दृष्टिपात करता है तो बाह्य जगत को दृष्टिपात करने वाला प्राणी सदैव दुःखित होता है। वह प्रभु का भक्त होता हुआ प्रभु के मार्ग में विचरण करने के नाते, विचरण करने के पश्चात भी बेटा! वह दुःखित रहता है।

तो परिणाम वह मानव संसार में दुःखित रहता है। अब मुनिवरों! द्वितीय प्रकार का प्राणी जिज्ञासु होता है। उसे जिज्ञासा होती है, क्या यह भी मैं जानना चाहता हूँ इसको भी मैं जानू, जिससे मुझे कहीं प्रभु की प्राप्ति हो जाएं। मुनिवरों! वह जिज्ञासु प्राणी होता है, जो दर्शनों में, शास्त्रों में मानो देखो, दर्शन और दार्शनिकता में वह पारायण को होने लगता है। मुनिवरों! वह जिज्ञासु होता है, जिज्ञासा से दार्शनिक के द्वारा पर जाता है भक्त के द्वारा पर जाता है। वह मानो देखो, वह जिस मार्ग में, सफलता को उसने प्राप्त किया, उस सफल प्राणी के द्वारा पंहुचता है और अपनी जिज्ञासा प्रगट करता है कि मुझे यह जिज्ञासा है, मैं प्रभु का जिज्ञासु बनना चाहता हूँ, और मेरे हृदय में यह जिज्ञासा है, आप मेरी जिज्ञासा भगवन! स्वीकार करो। मेरे प्यारे! देखो, जब वह सब जिज्ञासुओं के द्वारा भ्रमण कर लेता है, तो उस समय वह अपनी अन्तरात्मा में श्रद्धा, निष्ठा और जिज्ञासा को ले करके बेटा! प्रभु के द्वार पर जाने की उसे आकांक्षा हो जाती है। और वह प्रभु के मार्ग में रमण करने लगता है वह प्राणी बेटा! संसार में जिज्ञासु होता है। जिज्ञासा किसकी है उसे मानो जिज्ञासा ज्ञान की भी है और अपने प्रभु की भी जिज्ञासा है। मुनिवरों! देखो, वह जिज्ञासु प्राणी ही, संसार में एक मानवता के मार्ग में सफलवत को प्राप्त हो जाता है और तृतीय नाम का जो प्राणी वह मानो देखो, एक स्वार्थी, मुनिवरों! स्वार्थी प्राणी उसे कहते हैं जो प्रभु के मार्ग का केवल आन्तरिक गुणगान न गाता हुआ, संसार के वैभव के लिए, अर्थ के लिए मानो वह स्वार्थी प्राणी होता है। स्वार्थी जो प्राणी है, वह भी प्रभु का गुणगान गाता है। परन्तु गाता इसीलिए है कि उसे प्रभु की प्राप्ति हो जाएं। स्वार्थी बन जाएं स्वार्थी का अभिप्राय यह कि वो जगत में मान और प्रतिष्ठा मेरे प्यारे!, मान प्रतिष्ठा के लिए प्रभु का चिन्तन करता है। उसे स्वार्थी प्राणी कहते हैं। स्वार्थी मानो ब्रह्मे कृता असतु वह ब्रह्म के दूरी रहता है प्रकृति की लोलुपता में, अर्थ की लोलुपता में सदैव रमण करता रहता है, वह प्राणी द्रव्य का यदि दान भी करता है, वह द्रव्य का दान करता है तो वह भी प्रतिष्ठा के लिए करता है, उस प्राणी की वहाँ दान में रूचि होती है, जहाँ उसकी प्रतिष्ठा हो मानो उसकी मर्यादा ऊँची बनें। मेरे प्यारे! देखो, वह स्वार्थी प्राणी है वृत कहलाता है वह मानो देखो, समाज में मान और प्रतिष्ठा के लिए सर्वत्र कार्य करता है। परन्तु वाक आ जाए तो यह उच्चारण करने लगता है, मैं इतना दानी हूँ मैंने इस प्रकार का दान दिया है, मैंने मानो देखो, समाज और लोक कल्याण के लिए मैंने इतना देखो, मानो वह प्राणी प्रभु का भक्त न हो करके, वह व्यर्थ ही प्राणी कहलाता है। मेरे प्यारे! विचार यह कि संसार में स्वार्थी जो प्राणी है, जो मान प्रतिष्ठा में आ करके और वह प्रभु के मार्ग में द्रव्य देता है, परन्तु द्रव्य के देने के गर्भ में मुनिवरों! देखो, अभिमान की मात्रा होती है। तो इसलिए वह प्राणी मानो देखो, स्वार्थी कहलाता है और चतुर्थ प्रकार का जो प्राणी वह ज्ञानी है। बेटा! जो ज्ञानी पुरूष होते हैं, जो ज्ञान में रमण करते रहते हैं वह प्रभु के मार्ग में विचरण करते हुए वह ज्ञान से प्रत्येक वस्तु को दृष्टिपात करते हैं। वे ये विचारते हैं कि मैं जो दुःखित हूँ उसका मूल कारण क्या है? मुझे जो जिज्ञासा जागरूक हुई है, जिज्ञासा का मूल कारण क्या है? मानो मैं जो स्वार्थी बना है, उसका मूल कारण क्या है? अब वह विज्ञानमयी कारणों को जानता है, ज्ञानी कैसे जानता है बेटा! कारणों को? क्या एक बेटा! एक मानव संसार में, दुःखित है।

तो मुनिवरों! अभिप्राय यह है कि एक मण्डल नहीं है इस ब्रह्माण्ड में उस मूल कारण क्या क्योंकि यदि गति नहीं होगी, तो यह जगत भी नहीं होगा। तो वह जो गति है वह जो उसमें मानो शक्ति प्रभु की चेतना है, वह उसमें भरण है, भरण होने के नाते जड़वत चेतन क्रियाशील होते हैं। मेरे प्यारे! इसी प्रकार मानो ज्ञानी यह जानता है कि तुझे जो दुःख है वह क्योंकि संसार में तू दूसरों को दुःखित दृष्टिपात करता है जब वह अपनेपन को दृष्टिपात करता है, और अपने में जो नाना प्रकार के संस्कारों का जो दुःखद है मानो जो हम द्वितीयों को देख करके दुःखित होते हैं, अपनेपन को जो दृष्टिपात करके दुःखित होगा, मुनिवरों! देखो, वह प्राणी इस संसार सागर से पार हो जाएगा। और जो प्राणी मुनिवरों! देखो, अपने को दृष्टिपात नहीं करता, दूसरों को दृष्टिपात करता रहता है, मैंने बहुत पुरातन काल में एक वाक प्रगट किया था क्या बेटा! संसार में यह जो मानव में एक विडम्बना है इसका मूल कारण यह है कि वह अपने आनन्द को जो आत्मा का आनन्द है आत्मा के द्वारा जो आनन्द है, जैसा मुनिवरों! देखो, अन्नमय, प्राणमय, और विज्ञानमय और मुनिवरों! देखो, ब्रह्मे कृता स्वस्ति ब्रह्मे कृता रुद्रो वस्ता और देखो, अर्थंच केशाः वृत्ति अस्वात आनन्दा मुनिवरों! देखो, वह जो आनन्द अपने में से, द्वितीय में, जो प्राणी स्वीकार करता है वह सदैव प्राणी बेटा! विडम्बना से युक्त रहता है। तो इसीलिए विडम्बना नहीं होनी चाहिए क्योंकि यदि उसको उस मार्ग में चलना है, आज हमें प्रत्यक्षवाद को, साकार रूप में मानो सूक्ष्म रूपों से उसका मिलान करना है तो बेटा! हमें जगत में दुःखित नहीं होना चाहिए। क्योंकि हमे अपने में आनन्द को स्वीकार करना है, क्योंकि आनन्द में स्वतः है। इस स्वतः आनन्द को हमें जानना है जो स्वतः आनन्द को जानता है मुनिवरों! वह इस संसार को दृष्टिपात करके, मुनिवरों! दुःखित कदापि नहीं होता। तो ज्ञानी इस कारण को जानता है परन्तु जो जिज्ञासु है आज जो जिज्ञासा उसे उत्पन्न हुई है मानो देखो, उनकी जिज्ञासा का मूल कारण क्या है? क्योंकि संसार में मुनिवरों! देखो, प्रत्येक मानव, आनन्द को चाहता है। प्रत्येक मानव के हृदय में पिपासा होती है जैसे बेटा! मानव को अपने उदर की पूर्ति करने के लिए प्रातः काल से सांय काल तक प्रियतम की और द्रव्य को एकत्रित करता है उदर की पूर्ति करने का प्रयास करता है, पिपासा को शान्त करने का। परन्तु देखो, वह जो आत्मा की पिपासा है, वह जो मानो वह जो स्थूल रूप से देखो, वह क्षुधा से पीड़ित होता है इसी प्रकार एक आत्मा की भी पिपासा होती है, आत्मा की जो पीड़ा होती है और वह होती है ज्ञान, वह होती है आनन्द, मानो देखो, जिस मार्ग से, जिस मार्ग से विच्छेद हो गया आत्मा, उस मार्ग को पुनः प्राप्त करने की उसकी पिपासा होती है। और वह पिपासा क्या है बेटा! उस पिपासा का नाम जिज्ञासा कहते हैं। उस पिपासा को जिज्ञासु कहते हैं बेटा! जिससे जिज्ञासा उत्पन्न होती हैं। कि यहाँ भी मुझे मेरी आत्मा की प्रतिभा प्राप्त हो जाए, यहाँ भी प्राप्त हो जाए, दर्शनों में प्राप्त हो जाए मानो वेदों में प्राप्त हो जाएं, मेरे प्यारे! और देखो, भक्तजनों के द्वारा प्राप्त हो जाए, तो यह कृतिभा जिससे वह विचलित हो गया है जिज्ञासु, मानो उस विचलित होने से ही लक्ष्य को प्राप्त करना चाहता है तो मुनिवरों! जब उसका कारण क्या है? क्या वह सर्वत्र उस पिपासा को, उस आनन्द को जानना चाहता है जिस आनन्द से वह मानव दूरी हो गया है, जो जिज्ञासु दूरी हो गया है। मुनिवरों! देखो, उसमें आनन्द को प्राप्त करने के लिए, वह सदैव रमण करता रहता है, वह जहां तहां अपनी प्रतिभा में रमण करता हुआ अन्तिम परिणाम यह होता है कि उस आनन्द को वह अपने द्वितीय में स्वीकार करता है जब वह अपने में स्वीकार कर लेता है, तो बेटा! वह इस जिज्ञासा का मूल कारण ज्ञानी जान लेता है। तो मेरे प्यारे! तो यह होता है जिज्ञासा। तृतीय प्रकार का स्वार्थी प्राणी है मेरे प्यारे! देखो, स्वार्थी प्राणी इसीलिए वह अभिमान में परणित होता है, वह इसीलिए दान भी, दान भी जिज्ञासा से करता है कि तेरी मान प्रतिष्ठा हो जाए, क्योंकि इसका मूल कारण यह है क्या उसमें प्रभु को अपने से विमुख कर दिया वह देखो, जो प्रभु की अर्द्धांगिनी है जिसको हम मानो देखो, श्री कहते हैं लक्ष्मी कहते हैं मानो देखो, उसने उसका आश्रय लिया है और उसका आश्रय लेते हुए मानो वह उससे यह जानता हुआ कि यह ब्रह्म से पृथक है मानो देखो, ब्रह्म से पृथक है जब यह स्वीकार करता है, कि यह ब्रह्म से पृथक है लक्ष्मी मानो देखो, ब्रह्म में भान से दूरी है, तो मुनिवरों! देखो, वह भ्रम इसीलिए करता है जिससे इस लक्ष्मी के आसन से तेरी मान और प्रतिष्ठा होती रहे मेरे प्यारे! ज्ञानी यह जानता है ज्ञानी यह जानता है कि इसमें जो पार्थिव प्राणी है मानो अभिमन में परणित है इससे भी मेरा कल्याण नहीं होगा मानो देखो, विचारता है कि यह द्रव्य किसका है। वह मानो श्री किसकी है? तो मुनिवरों! देखो, यह विचारता है कि धर्म और अर्थ मुनिवरों! दोनों पृथक नहीं हो सकते। क्योंकि धर्म बिना लक्ष्मी पृथक नहीं, और धर्म बिना पृथक नहीं है क्योंकि दोनो का समन्वय करने का नाम धर्म कहलाता है। जैसे एक मानव याग करना चाहता है। एक मानव अजामेध याग करना चाहता है मानो वह याग करता है किसके द्वारा श्री के द्वारा, अर्थ के द्वारा, अर्थ और दोनो का मिलान करना चाहता है। दोनो का जब मिलान होता है, धर्म और मुनिवरों! देखो, धर्म और अर्थ जब देनों का मिलान होता है दोनो के मिलान होने के पश्चात मुनिवरों! देखो, यज्ञ में से सुगन्धि की उद्बुद्धता हो जाती है। उस सुगन्धि का नाम धर्म है दुर्गन्धि का नाम अधर्म है, और सुगन्ध का नाम मुनिवरों! देखो, इसमें विचारो की सुगन्धि भी हैं उसमें साकल्य की सुगन्धि भी है, मेरे प्यारे! उसमें जो देने वाला जो द्रव्य को प्रदान करता है उस भावनाओं से उस भावना के संग विराजमान है। तो विचार क्या मुनिवरों! देखो, जब वह स्वाहाः हो करके, अग्नि उसे भस्माभूत कर देती है, वह जो सूक्ष्म रूप बन करके वायुमण्डल में जाता है वह अपने अपने विचारों से, अपनी अपनी प्रतिष्ठा में प्रतिष्ठित हो जाता है। मेरे प्यारे! विचार यह कि मानो देखो, धर्म और अर्थ दोनो का मिलान हो गया। मानो एक मानव मुनिवरों! स्वाध्याय करना चाहता है, दर्शनों का और स्वाध्याय में मेरे प्यारे! धर्म होगा निष्ठा जिसे कहते हैं निष्ठा होगी और अर्थ भी होगा। मानो देखो, अर्थ से इसका मिलान होता है समन्वय होता है, किसी भी पोथी का हम समन्वय करना चाहते हैं तो अर्थ बिना नहीं होगा, मानो देखो, अर्थ तो उसका करना होगा और उस समन्वय का मिलान मुनिवरों! देखो, बुद्धि से किया जाता है मानो मन और प्राण दोनों का समन्वय किया जाता है और मन और प्राण का जैसा हमने कल के वाक्यों में कहा था मन और प्राण को समन्वय करने का नाम संसार में योग माना है।

तो विचार क्या मानो देखो, जब ज्ञानी यह जानता है कि यह जो अर्थ है, जिसके ऊपर हम अभिमान करते हैं जिसके ऊपर हम स्वार्थी बन रहें हैं मानो देखो, यह द्रव्य तो सब प्रभु का है क्योंकि सब कुछ प्रभु ही देने

वाला है और प्रभु के द्वार से आता है। मेरे प्यारे! देखो, यदि अर्थ धर्म के संसार में बिना रहेगा, तो वह अर्थ भी मानव का विनाश कर देगा और मुनिवरों! देखो, अर्थ में धर्म का मिलान नहीं होगा तो मुनिवरों! देखो, वह धर्म भी नग्न रहेगा। मेरे प्यारे! देखो, मिलन तो होने चाहिए जैसे हमारे यहाँ आदि ऋषियों ने यह कहा है कि मानव का शरीर मुनिवरों! यदि इन्द्रियों पर संयम नहीं है तो वस्त्र धारण करने वाला प्राणी भी मुनिवरों! देखो, नग्न रहता है और यदि मुनिवरों! देखो, ज्ञान है, ज्ञान रूपी वस्त्र को धारण करने वाला प्राणी वस्त्रहीन होता हुआ भी मुनिवरों! देखो, वस्त्रों से युक्त रहता है। तो परिणाम क्या, मेरे प्यारे! प्रत्येक वस्तु मानो देखो, वह अपृक्त होनी चाहिए। अपरोक्ष रहनी चाहिए। इसी प्रकार मेरे प्यारे! यह धर्म है, यह जो अर्थ है वह जो स्वार्थी प्राणी है उस स्वार्थी प्राणी को ज्ञानी जानता है और वह यह जानता है कि यह जिसका निर्माण कर रहा है यह तो प्रभु! का दिया हुआ ही पदार्थ है। मानो प्रभु की जो श्री है उसके चरणों में ओत प्रोत रहती है। मानो यदि उसकी चेतना नहीं होगी, उसमें, तो यह जो वह जड़वत प्रकृति है वह द्रव्यवत है। इसीलिए चैतन्य प्रभु है, और जड़वत लक्ष्मी है, और जड़वत अर्थ है इसीलिए जड़वत और चेतना का मिलान तब तक नहीं होगा मुनिवरों! देखो, जब तक मानव का कल्याण और संसार में विवेक और देखो, ज्ञान का उत्पन्न नहीं होगा। तो ज्ञानी यह जानता है कि यह दोनो एक ही वस्तु हैं। मानो देखो, सृष्टि का प्रारम्भ होता है, और यह जो पञ्च महाभूत हैं, इन पञ्च महा भूतों को गति देने वाला चैतन्य है, निर्माण करने वाला चैतन्य है मानो देखो, एक दूसरे, एक दूसरे से समन्वय किया हुआ जैसे सूर्य में नाना प्रकार की किरणे चलती हैं वह किरणे कहीं मानो वनस्पतियों को तपाती हैं, कहीं स्वर्ण की धातु को तपाती हैं, कही इनकी उत्पत्ति हो रही है, कहीं यह तप रहीं हैं मानो उन्हीं नाना प्रकार की किरणों में उत्पती है उन्हीं किरणों में मानव तपता है प्रत्येक मुनिवरों! देखो, प्रत्येक धातु का निर्माण, सूर्य की आभाओं से होता है अब मुनिवरों! देखो, वह जो चेतना है, वह चेतना प्रभु की है और वह जो द्रव्य है कण हैं वह प्रकृति के हैं परन्तु वे कण उस काल में तपायमान होते हैं जब मुनिवरों! देखो, उस प्रभु की महती, प्रभु की रचना, प्रभु के विधान की जब तब पुट नहीं लग पाती जब तक मुनिवरों! देखो, वह ज्यों का त्यों बना रहता है। तो विचार यह जानता है क्या यह जो जगत है इसमें जो भी कारण हो रहा है, जो भी विश्वसनीय हो रहा है, वह मानो देखो, एक अज्ञानता का मूल कारण है, ज्ञान होने के पश्चात मुनिवरों! देखो, धर्म, काम, मोक्ष की कल्पना करता है प्राणी और ज्ञान में यह विचारता है कि यह द्रव्य तो प्रभु! की देन है, मेरा क्या है संसार में यह जो मैं वाद है यह तो मुझे अन्धकार में ले जाने वाला है यह प्रकाश में ले जाने वाला नहीं। अब मुझे प्रकाश में पंहुचना है, अन्धकार में नहीं जाना है। तो मुनिवरों! देखो, हमारे ऋषियों ने यह कहा कि वह जो ज्ञानी है, वह प्रभु का प्रिय भक्त होता है, वह प्रभु का प्रिय होता है, और वह ज्ञानी ही मानो देखो, प्रभुतव में रमण करता रहता है। मेरे प्यारे! अपने मूल कारण को वह जानता है, विचार विनिमय क्या, आज हमें विचारना है, आज हमें ज्ञान के सम्बन्ध में विचारना है ज्ञान किसे कहते हैं? मेरे प्यारे! ज्ञान कहते हैं जड़वत को त्यागना, और चेतना को विचारना, चेतना पर आरूढ़ हो जाना हो जाने का नाम ज्ञान है बेटा!।

मेरे प्यारे! मानव स्वप्न में जाता है, जागरूक में जाता है और सुषुप्ति में जाता है मुनिवरों! देखो, ये तीनो जो अवस्थाएं है प्राण की, जैसे जाग्रत है, जाग्रत यह विचारता है कि मन और नेत्रों का समन्वय जगत के साथ है। आत्मा का सन्निधान है। उन दोनो के साथ में आत्मा का सन्निधान है। मेरे प्यारे! स्वप्न में जाता है तो मन संसार की नवीन रचना करता है परन्तु आत्मा के प्रकाश को चाहता है। मेरे प्यारे! अब सुषुप्ति में जाता है तो मन का जितना व्यापार है, जैसे मन, बुद्धि, चित्त, और अहङ्कार ये चारों वस्तु मिल करके बेटा! एक अन्तःकरण बना करता है। मानो अन्तःकरण में यह सब अवस्थित हो जाते हैं और उस समय यह सुषुप्ति में यह रमण करता है। मेरे प्यारे! सुषुप्ति कहते हैं जगत के व्यापार से पृथक होना, मन अन्तःकरण में अपने को अवस्थित करने का नाम सुषुप्ति कहा जाता है। मेरे प्यारे! इन मूल के मूल कारणों का ज्ञानी जानता है। मेरे प्यारे! प्राणां ब्रह्मे आत्मां मुनिवरों! देखो, प्राण के साथ में सुषुप्ति में, आत्मा प्राण का, दोनो का मिलान दोनों का समन्वय सार्थक है मेरे प्यारे! प्राण को शक्ति प्राप्त हो जाती है, चेतना से प्राप्त होती है। मेरे प्यारे! ऋषिवर! विचार यह, ज्ञानी यह जानता है कि प्राण के साथ में, जो आत्मा का सन्निधान है, उसे हमें जानना है और उसके ऊपर हमें आरूढ़ हो करके, साधना करनी है, हमें साधक बनना है। इन तीनों अवस्थाओं को त्याग करके, हम मानो देखो, साधक बनें हम अन्तःकरण में, संसार की कोई बाह्य जगत की कोई वस्तु न आने दे हम सदैव मानो देखो, एकोकी जो हमारा देव है वह जो चेतना बद्ध है, वह चेतनता उसमें जानी चाहिए जिसमें अन्धकार का एक अङ्कुर भी नहीं जाना चाहिए। मेरे प्यारे! ऋषिवर! यह ज्ञानी जानता है, तो ज्ञान में रमण करने वाला प्राणी बेटा! बाह्य जगत का कार्य करता हुआ भी मुनिवरों! देखो, अकर्त्ता ही दृष्टिपात होने लगता है। जैसे भगवान कृष्ण ने कहा है ब्रह्मे वृतं ब्रीहिता श्रंजनं ब्रीहि कृता अस्सुतम जैसा मुनिवरों! देखो, हमारे आस्काचार्य ने और महर्षि दालभ्य ने कहा है। दालभ्य और शिलक ने कहा है साधूलि ब्रहे कृताम् मानं जगत आत्मा मानो जो आत्मा में लीन रहने वाला प्राणी है वह बाह्य जगत अधितत्त से वह कार्य भी करता है परन्तु जगत का कार्य ज्ञानी को बेटा! लिपायमान नहीं होता। ज्ञानी ही होता है, जो मुनिवरों! जैसे जो प्रकृति के आवेशों में दृष्टिपात करता है जगत को परन्तु वह जगत के आवेशों में नहीं आ पाता, वह अवस्थित नही होता वह उससे पृथक रहता है। मुनिवरों! देखो, करने वाला प्राणी अकर्त्ता रहता है, जैसे एक मानव, बाह्य जगत के कार्य करता है, जैसे एक मानव नाना प्रकार के सत्संगो को ग्रहण करता है, परन्तु जो सत्संग अन्तःकरण में, चित्त में स्थित हो जाता है वह सत्संग तो उसका अपना हो जाता है। परन्तु वह जो एक श्रोत्र से श्रवण किया और दूसरे श्रोत्र से त्याग दिया है मुनिवरों! उसका अन्तःकरण में कोई प्रभाव नहीं होता उसका चित्त पर कोई संस्कार नहीं बनता, वह तो देखो, वायु में से आया और वायु में ही रमण कर गया। इसीलिए जो ज्ञानी पुरूष है वह मुनिवरों! देखो, प्रकृति के आवेशों में कार्य करके ही बेटा! मुनिवरों! अकर्त्ता रहते हैं। इसीलिए प्रकृति के आवेश में, वह लिपायमान नहीं होते, क्योंकि वह उन आवेशों को चित्त तब नहीं जाने देते। मुनिवरों! देखो, बुद्धि तब सीमित रहने देते हैं क्योंकि कई प्रकार की बुद्धि की धारा रहती हैं उन बुद्धियों तक नहीं जाने देते, परन्तु देखो, वह ऋषि कहलाते हैं और वह ऋषि हैं वे मुनिवरों! देखो, संसार के प्रलोभनों में नहीं आते, प्रलोभन दृष्टिपात करते तुम्हें दृष्टिपात होते हैं, परन्तु उनको प्रलोभन अपने में प्रलोभित नहीं कर पाता, मुनिवरों! वह संसार के मानो देखो, जगत का कार्य करते दृष्टिपात होते हैं परन्तु वह कार्य में लिप्त नहीं होते क्योंकि वह ज्ञानी इस लिपायमान के कारण को जानता है, जो कारण का नहीं जानता, उसमें निष्ठा नहीं होती। एक मानव ऐसा है जो उसको कारण को जानता है परन्तु कारण को जानता उसमें लिपायमान हो सकता है परन्तु जो अन्तःकरण में यह बाह्यजगत की वार्ता को नहीं जाने देता क्योंकि वह व्यापार करता रहता है परन्तु आन्तरिक जगत कुछ और बाह्य जगत कुछ और होता है जैसे एक व्याख्याता है जैसे महात्मा दिग्ध के तुमने दर्शन किए होंगे पुत्रवत महात्मा दिग्ध जब व्याख्यान देते थे तो यह संसार की वार्ता प्रगट करते थे परन्तु जब उनके समीप क्रियात्मक जीवन को दृष्टिपात करते थे तो मानव को घृणा हो जाती थी तो घृणा का मूल कारण क्या? क्योंकि वह जो उच्चारण करते थे वह जो भी वाक उच्चारण करते थे उनके अनुसार उनका जीवन न होने के कारण मानो उनसे घृणा होती थी। तो मेरे प्यारे! लिपायमान प्राणी नहीं होते और व्यापार कुछ करते हैं परन्तु जब उनका क्रियात्मक जीवन मानो दृष्टिपात करता है तो मानो उनसे प्रभावित हो जाता है और उस ज्ञानी के चरणों में ओत प्रोत हो जाता है। मेरे प्यारे! वह उसको जान लेता है। आज मैं बेटा! अधिक विवेचना देने नहीं आया हूँ हम कोई व्याख्याता नहीं हैं, मैं संक्षिप्त परिचय देने आया हूँ। बेटा! आज का हमारा वाक क्या कि हम उन चारों के प्रकार के प्राणियों के मूल कारण को जानते रहें। और संसार में मुनिवरों! देखो, अक्षुत होते हुए ज्ञान के मार्ग पर चलते हैं। ज्ञान कहते हैं प्रकाश को, जिस मानव का अन्तरात्मा सदैव प्रकाश में रमण करता रहता है।

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन। आर्तो जिज्ञासरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥ गीता ७.१६

रामसुखदास जी महाराज

भाषार्थः हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ अर्जुन ! चार प्रकार के भक्त मेरा भजन अर्थात् भक्ति करते हैं आर्त (दुःख अथवा संकट से छुटकारा चाहने वाले), जिज्ञासु (ज्ञान अथवा रहस्य को जानने वाले), अर्थार्थी (किसी पदार्थ अथवा कामना की पूर्ति के लिए), और ज्ञानी (कुछ भी न चाहने वाले अथवा निष्काम रूप से भक्ति करने वाले)।

106. यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि ॥ योग दर्शन २.२९

पदार्थः यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये योग के आठ अङ्ग हैं।

व्याख्याः शृङ्गी मुनि कृष्णदत्त जी महाराज

देखो, यम नियम में प्रायः यह आता है कि सबसे प्रथम योग के लिए हमारा आहार शुद्ध होना चाहिए आज इस मानव का आहार सुन्दर नही हो, शुद्ध और पवित्र नही हो तो आज यौगिक प्रक्रिया में लाना यह देखो, अस्वाभाविक तथा असम्भव मुझे प्रतीत होता है मुझे स्मरण होता रहता हैं केवल अनुभव भी किया हैं माक्रुतम देखो, योगी बहुत समय के पश्चात मानो साधना में परणित होता रहता हैं सोमरसों का पान कराया जाता है। यह क्या आज मैं प्रथमे ब्रह्मे लोकाः मेरे पूज्यपाद गुरुदेव यह कहा करते थे कि हे पुत्र संसार में सुन्दर तो कोई कोई होता हैं यों तो संसार में व्यक्तव्य देने वाले विचार विनिमय करने वाले संसार में बहुत हुआ करते हैं।

तो हे भगवन! हे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव आज मैं यौगिक वाक्य प्रकट करने नही जा रहा हूँ केवल अपने विचार इसीलिए व्यक्त किए है कि यह जो आज का जगत है। यह इतना पृथकता मे क्यों परणित हो रहा है इसीलिए हो रहा है क्योंकि अध्ययन सूक्ष्मता होने के नाते ओर विचार की सूक्ष्मता होने के नाते विचार नही रहा अध्ययन नही रहां यम नियम के पालन नही रहे।

जो मानव यम नियम का पालन करने वाला नही होता, प्राणायाम की गति जिसकी गति नही होती, उसका हृदय मानवता तपी हुई नही होती, तो वह मानव संसार में योगी नही कहलाया जाता।

मुनिवरों! मुझे स्मरण आता रहता है जब मेरे पूज्यपाद गुरुदेव आश्रम में प्रविष्ट होते थे उस समय पूज्यनीय गुरुदेव प्रकट कराते थे कि संसार में महापुरुष कोई कोई होता है। उन महापुरुषों में भी आत्मा को जानने वाला कोई कोई होता है। आत्मवेत्ता में भी पूज्यपाद कोई कोई होता है। परन्तु देखो, ऐसा मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे कई काल में वर्णन कराते हुए कहा था।

सारी रात्रि ब्रह्म का चिन्तन चलता रहता था वेदों का अध्ययन प्रारम्भ रहता था क्योंकि वेद की परम्परा को नष्ट करने के पश्चात कोई संसार में यह चाहता है कि मैं आज यौगिकवाद प्रक्रिया में ला सकता हूँ तो यह मानव का असम्भव विचार रहा हैं क्योंकि मुझे संसार का अनुभव है वाक्य उच्चारण करने का हमारा अभिप्रायः यह है कि हमारे जो वैदिक पद्धति है वैदिक जो यम नियमों का पालन करना है यह मानव के लिए, साधको के लिए बहुत अनिवार्य हैं।

107. ओ३म् ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत। इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत्॥ अथर्ववेद ११.५.१९

पदार्थः (ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य [वेदाध्ययन और इन्द्रियदमन], (तपसा) तप से (देवाः) विद्वानों ने (मृत्युम्) मृत्यु [मृत्यु के कारण निरुत्साह, दरिद्रता आदि] को (अप) हटाकर (अघ्नत) नष्ट किया है। (ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य [नियमपालन] से (ह) ही (इन्द्रः) सूर्य ने (देवेभ्यः) उत्तम पदार्थों के लिये (स्वः) सुख अर्थात् प्रकाश को (आ अभरत्) धारण किया है॥ पण्डित क्षेमकरण

108. ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः। योग दर्शन २.३८

ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः।

पद पाठः ब्रह्मचर्य, प्रतिष्ठायाम्, वीर्य, लाभः॥

पदार्थः ब्रह्मचर्य ब्रह्मचर्य (में), प्रतिष्ठायाम् दृढ़ स्थिति हो जाने पर, वीर्य सामर्थ्य (का), लाभः लाभ (होता है)॥
ब्रह्मचर्य में प्रतिष्ठित होने पर वीर्य लाभ होता है। अर्थात् ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठित व्यक्ति के देह में परमेश्वर की विमल ज्योति प्रकाशित होती है।
उपस्थेन्द्रीय के अतिरिक्त अन्य इन्द्रियों पर भी नियन्त्रण रखना चाहिए। आंखों के रूप में जाने से, कानों को शब्दों की ओर दौड़ लगाने से, नासिका को गन्ध की ओर भागने से, जिह्वा को रसपान से, त्वचा को स्पर्श आनन्द में मग्न होने से रोको। सभी इन्द्रियों का निरोधरूपी ब्रह्मचर्य साधक को ब्रह्म साक्षात्कार की ओर ले जाएगा।
ब्रह्मचर्य दो शब्दों के मेल से बना है ब्रह्म और चर्य। ब्रह्म का अर्थ है ईश्वर, वेद, ज्ञान और वीर्य। चर्य का अर्थ है चिन्तन, अध्ययन, उपार्जन और रक्षण। इस प्रकार ब्रह्मचर्य का अर्थ होगा साधक ईश्वर का चिन्तन करे, ब्रह्म में विचरे, वेद का अध्ययन करे, ज्ञान का उपार्जन करे। शक्ति को उच्च स्तर की ओर उन्मुख करना और खाये हुए अन्न को ओजशक्ति में रूपान्तरित कर देना॥

109. नाअयमात्मा बलहीनेन लभ्य:। मुण्डकोपनिषद ३.२.४

नाअयमात्मा बलहीनेन लभ्य:।

पदार्थः ब्रह्मचर्य से हीन व्यक्ति परमात्मा को नहीं पा सकता।

व्याख्याः शृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

ब्रह्मचारी कौन

माता मल्दाल्सा के वाक्यों को पान करने वाला ब्रह्मचारी बोला कि हे मातेश्वरी! तुम मुझे ब्रह्मचारी क्यों कहती हो? मैं नहीं जान पाता हूँ कि तुम ब्रह्मचारी मुझे उच्चारण किए जा रही हो? उन्होंने कहा हे ब्रह्मचरिष्यामि! तुझे ब्रह्मचारी इसलिए कह रही हूँ कि इसमें दो शब्द माने गएं हैं। ब्रह्म है, और चरी है। यह जो चरी है, इसका नाम प्रकृति है और ब्रह्म परमपिता परमात्मा को कहा जाता है। मानो जो दोनो का मन्थन करने वाला है वह मन्थन कर रहा है। ब्रह्मचरिष्यामि, ब्रह्मचारी अप्रतम् जो प्रत्येक मानो आभा को अपने में दृष्टिपात करने वाला है और वह ब्रह्म अस्सुतम देखो, ब्रह्म और चरी दोनों का ही मन्थन करता है। मानो देखो, दोनों के गर्भ में एक मृत्यु देखो, नृत्त कर रही है। मृत्यु को जो दूरी करना चाहता है, वो ब्रह्मचारी कहलाता है। इसीलिए तू ब्रह्मचारी है। क्योंकि तू अपने में महान कहलाएगा। मेरे पुत्रो! जब माता मल्दाल्सा ने यह कहा तो ब्रह्मचारी ने कहा हे माता! यह भी मैंने स्वीकार कर लिया। यह आपने जो मुझे उत्तर दिया, परन्तु ये जानना चाहता हूँ ब्रह्मचारी कौन है? पुनः यह प्रश्न करने लगा ब्रह्मचारी, कि ब्रह्मचारी कौन है? उन्होंने कहा हे बाल्य! जो साधक होता है और साधना में प्रवेश करता है, मानो देखो, जो प्रत्येक श्वांस मानं ब्रहे कृतं लोकाः प्रत्येक श्वांस को मानो देखो, तरंग को ब्रह्मसूत्र में जो पिरोने वाला है, वो ब्रह्मचारी कहलाता है। मेरे प्यारे! देखो, उन्होंने कहा हे माता! यह भी मैंने जान लिया। परन्तु मेरा यह प्रश्न है कि ब्रह्मचारी कौन है? उन्होंने कहा हे बालक! ब्रह्मचारी वो है जो मोक्ष की पगडण्डी को ग्रहण करना चाहता है। जो प्रकाश की पगडण्डी में प्रवेश कर जाता है और अन्धकार की पगडण्डी से दूरी हो जाता है। क्योंकि दो प्रकार के मार्ग हमारे यहाँ माने गएं हैं। एक मानो इस संसार का मार्ग है और एक चेतना का, ब्रह्म का, प्रकाश का मार्ग है। जिसे ज्ञानवान ग्रहण करते हैं। हे ब्रह्मचारी! जो ज्ञानवान बनकर के अन्धकार को दूरी करने वाला है वही ब्रह्मचारी कहलाता है।
मेरे प्यारे! देखो, ब्रह्मचारी ने स्वीकार कर लिया उन्होंने कहा माता! यह भी मैंने स्वीकार कर लिया परन्तु मैं यह जानना चाहता हूँ, ब्रह्मचारी कौन है? उन्होंने कहा हे पुत्र! ब्रह्मचारी वह कहलाता है, जो इस संसार को विजय कर लेता है और संसार को वो विजय करता है, जो मन को अपने में धारण करता हुआ प्राण में प्रवेश कर देता है और प्राण प्रतिष्ठा विचारों में प्रवेश हो जाती हैं देखो, मन, प्राण और विचार जब ये तीनों एक सूत्र के मनके बन जाते हैं, तो वह ब्रह्मचारी मृत्यु को विजय कर लेता है, और वही ब्रह्मचारी कहलाता है। मेरे प्यारे! देखो, माता मल्दाल्सा का बाल्य छह वर्ष का ब्रह्मचारी यह प्रश्न कर रहा है।
पुनः उसने ये प्रश्न किया कि हे माता! ब्रह्मचारी कौन कहलाता है? ब्रह्मचारी तुम किसे उच्चारण करते हो? उन्होंने कहा ब्रह्मचारी वह कहलाता है, जो मानो देखो, ब्रह्मणं ब्रभा कृतं जो वसुन्धरा को जानता है। मानो देखो, वसुन्धरा क्या है? वसुन्धरा कहते हैं पृथ्वी को। वसुन्धरा कहते हैं, जो पालन करने वाली है। मानो देखो, वसुन्धरा मेरे प्यारे! देखो, जो पृथ्वी से लेकर के और मुनिवरों! देखो, माता और वह जो परमपिता परमात्मा जो वसुन्धरा है, इन तीनों को जानने वाले को बेटा! ब्रह्मचारी कहते हैं। मेरे प्यारे! देखो, माता के उपदेशों को, देखो, कृतिका को पान करके वो मौन हो गया। उसने कहा माता! ये मैंने जान लिया परन्तु मेरा एक प्रश्न और रह गया कि ब्रह्म किसे कहते है?

110. स्थिरसुखम् आसनम्॥ योग दर्शन २.४६

स्थिरसुखम् आसनम्॥

स्थिर सुखम् आसनम्॥
स्थिर एक ही स्थिति विशेष में बिना हिले डुले स्थिर रहना, सुखम् सुखमय अर्थात आरामदायक स्थिति या अवस्था को, आसनम् आसन कहते हैं॥

व्याख्याः शृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

बेटा! मैं बहुत पुरातन काल में एक एक आसन पर विराजमान होता। क्योंकि आसन भी ऐसा हो जिस आसन पर वह सिद्धासन वाला हो। मेरे प्यारे! देखो, उस आसन पर विराजमान हो करके सोम लताओं को पान करने वाला मेरे प्यारे! सोम लताओं के गुणों वाला आसन हो। जैसे हमारे यहाँ कुश है। कुश कहते हैं पृथ्वी में मानो एक औषध होती है उसे कुश कहते हैं। परन्तु कुश के नाना प्रकार के भेदन होते हैं। उन्हीं का आसन है, उन्हीं का ओड़ना है। तो मेरे प्यारे! देखो, उसमें सुगन्धि जाती रहती है, मस्तिष्कों का निर्माण होता रहता है। मेरे प्यारे! जब मानव व्याख्या में जाता है, बौद्धिकता में जाता है तो मानव के जीवन का एक मानवीय क्षेत्र में आभा से युक्त होने वाला निर्माण आभा में रमण करने वाली निर्माण शालाओं का निर्माण होता है। तो मेरे प्यारे! आज मैं विशेषता प्रकट करने नहीं आया हूँ। विचार विनिमय यह कि नाना प्रकार की जो औषध हैं, आयुर्वेद का हमें पूर्णतया ज्ञान होना चाहिए।

111. बाह्याभ्यान्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकालसंख्याभि:। योग सूत्र २.५०

बाह्याभ्यान्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकालसंख्याभि: परिदृष्टो दीर्घ सूक्ष्म:।

बाह्य आभ्यंतर स्तम्भवृत्ति: देश काल संख्याभि:परिदृष्ट: दीर्घ सूक्ष्म:॥
बाह्यवृत्ति: प्राणवायु को बाहर निकालकर कर बाहर ही रोकना, आभ्यंतर वृत्ति: प्राणवायु को भीतर भरकर भीतर ही रोकना, स्तम्भवृत्ति: प्राणवायु को न भीतर भरना न ही बाहर छोड़ना अर्थात प्राणवायु जहाँ है उसे वहीं पर रोकना, देश स्थान अर्थात प्राणवायु नासिका से जितनी दूरी तक जाता है वह उसका स्थान है। काल समय अर्थात जितने समय तक प्राणवायु बाहर या भीतर रुकता है।, संख्याभि: एक प्राणायाम को करने में स्वाभाविक रूप से कितने श्वास प्रश्वास हो सकते हैं, उनकी गणना द्वारा परिदृष्ट: भली प्रकार देखा व जाना हुआ प्राण, दीर्घ लम्बा व सूक्ष्म: हल्का हो जाता है।
बाह्यवृत्ति, आभ्यन्तरवृत्ति व स्तम्भवृत्ति ये तीन प्राणायाम स्थान, समय व गणना के द्वारा ठीक प्रकार से देखा व जाना से प्राण लम्बा व हल्का हो जाता है।

112. बाह्याभ्यन्तरवविषयाक्षपी। योग दर्शन २.५१

बाह्याभ्यन्तरवविषयाक्षपी चतुर्थ:।

बाह्य, आभ्यन्तर-विषय-आक्षेपी, चतुर्थ:॥
बाह्य - श्वास को बाहर निकाल कर बाहर ही रोकना, आभ्यन्तर- श्वास को भीतर लेकर भीतर ही रोकना, विषय - कार्य या कर्म का, आक्षेपी - रुओत्याग या विरोध करने वाला, चतुर्थ: - यह चौथा प्राणायाम है।
श्वास को बाहर रोकने व अन्दर रोकने के विषय अर्थात कार्य का त्याग या विरोध करने वाला यह चौथा प्राणायाम है।

व्याख्याः शृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

यह प्राण ही तो सखा है, यह प्राण जब देखो, योगीजन, अपने ब्रह्मवर्चोसी की उपासना करते हैं अथवा साधना करते हैं। वह प्राणायाम करते रहते हैं, मानो कहीं वह सूर्य प्राणायाम करते हैं, कहीं चन्द्र प्राणायाम करते हैं, मानो कहीं संकल्पोमयी प्राणायाम करते हैं और उसी से रेचक और कुम्भक बन करके मानो वह प्राण ही मेरे प्यारे! देखो, हमारी आत्मा की जो अनुपम तरंगें हैं, मुनिवरों! देखो, जो चित्त के मण्डल में, जो नाना प्रकार के संस्कार विद्यमान हैं। जिनके कारण संसार में आवागमन लगा हुआ है, कोई यहाँ आ रहा है, कोई जा रहा है। मेरे प्यारे! देखो, वह जो आवागमन लगा हुआ है, वह आवागमन संस्कारों के कारण है। जब तक मानव के शरीर में, संस्कार विद्यमान होते हैं, इन संस्कारों से ही, मानव के जीवन का आवागमन, शरीरों को धारण करता रहता है। परन्तु जब यह प्राण सखा मुनिवरों! देखो, ऊर्ज्वा को प्राप्त करने लगते हैं यौगिक जन, साधक, जब साधना करता है तो वह संकल्पोमयी प्राणायाम करता है। मानो सूर्य स्वर से, प्राण की उर्ध्वा गति बनाता है, चन्द्र स्वर से उसकी ध्रुवा गति बनाता है मानो कहीं ध्रुवा से उर्ध्वा में, कहीं उर्ध्वा से ध्रुवा में, इस प्रकार जब प्राणायाम करता है तो मन की प्रतिभा उसमें रत्त हो जाती है। मेरे प्यारे! देखो, इन दोनों का एकोकीकरण प्रारम्भ होने लगता है। जब इनका एकोकीकरण होता है तो वह संस्कारों का क्षय होने लगता है। मानो देखो, संस्कारों को वह जानने लगता है। लघु मस्तिष्क में, मुनिवरों! देखो, वहीं प्राण को ले जाता है। रेचक करता है पूरक करता है कुम्भक करता है।

बाह्य आभयन्तर रेचक व कुम्भक प्राणायाम महर्षि दयानन्द

ओ३म्' को ईश्वर के दर्शन का साधन बनाने का यह ढंग है कि यम और नियम के व्रत पूरे करके, दृढ़ आसान लगाकर रेचक, पूरक, कुम्भक प्राणायाम की जो विधि महर्षि स्वामी दयानन्द जी ने सर्व साधारण के लिए 'सत्यार्थप्रकाश' में अपने पूरे अनुभव से लिखी है, उसके अनुसार प्राणायाम करें। स्वामी जी लिखते हैं।
जैसे अत्यन्त वेग से वमन होकर अन्न जल बाहर निकल जाता है ,वैसे प्राण को बल से बाहर फेंककर,बाहर की यथाशक्ति रोक देवें। जब बाहर निकलना चाहें,तब मूलेन्द्रिय को ऊपर खींच रखें,जब तक कि प्राण बाहर रहता है। इसी प्रकार प्राण बाहर अधिक ठहर सकता है। जब घबराहट हो, तब धीरे धीरे वायु को भीतर लेके फिर भी वैसे ही करते जायें, जितना सामर्थ्य और इच्छा हो;परन्तु मन में 'ओम्' इसका जप करते जायें।इस प्रकार करने से आत्मा और मन की पवित्रता और स्थिरता होती है।'बाह्य विषय'अर्थात् बाहर की अधिक रोकना,दूसरा'आभ्यन्तर'अर्थात् भीतर जितना प्राण रोका जाये उतना रोक के,तीसरा 'स्तम्भवृत्ति'

अर्थात् एक ही बार जहां का तहां प्राण को यथाशक्ति रोक देना,चौथा 'बाह्याभ्यन्तराक्षेपी' अर्थात् जब प्राण भीतर से बाहर आने लगे,तब उसके विरुद्ध न निकलने देने के लिए बाहर से भीतर लें;और जब बाहर से भीतर आने लगे,तब भीतर से बाहर की ओर प्राण को धक्का देकर रोकता जाये।ऐसे एक दूसरे के विरुद्ध किया करें तो दोनों की गति रुककर प्राण अपने वश में होने से मन और इन्द्रिय भी स्वाधीन होते हैं।बल पुरुषार्थ बढ़कर बुद्धि तीव्र,सूक्ष्म रूप हो जाती है और बहुत कठिन तथा सूक्ष्म विषय को शीघ्र ग्रहण करती है। इससे मनुष्य के शरीर में वीर्य वृद्धि को प्राप्त होता है बल, पराक्रम, जितेन्द्रियता, सब शास्त्रों को थोड़े ही काल में समझकर उपस्थित कर लेगा।स्त्री भी इसी प्रकार योगाभ्यास करे।

113. ओ३म् उपह्वरे गिरीणां संगथे च नदीनाम्। धिया विप्रो अजायत॥ ऋग्वेद ०८.००६.२८

इन्द्रः, विराडार्षीगायत्री, षड्जः।

पदार्थः (गिरीणाम्, उपह्वरे) पर्वतों के गहर प्रदेश में और (नदीनां, संगथे, च) नदियों के संगम में (विप्रः) वह विद्वान् परमात्मा (धिया) स्वज्ञानरूप से (अजायत) विद्यमान है॥

114. अपां समीपे नियतो नैत्यिकं विधिमास्थितः। सावित्रीमप्यधीयीत गत्वाऽरण्यं समाहितः॥ मनु स्मृति २.१०४

पदार्थः (अरण्यं गत्वा) जंगल में अर्थात् एकान्त देश में जा (समाहितः) सावधान हो के (अपां समीपे नियतः) जल के समीप स्थित होके (सावित्रीम्+अपि+अधीयीत) सावित्री अर्थात गायत्री मन्त्र का उच्चारण अर्थ ज्ञान और उसके अनुसार अपने चाल चलन को करे।

व्याख्याः महर्षि दयानन्द

आगे चलकर ऋषि दयानन्द जी महाराज ने लिखा है जंगल मे अर्थात् एकान्त में जा, सावधान हो के, जल के समीप स्थित हो के, नित्यकर्म को करता हुआ 'सावित्री' अर्थात् 'गायत्री मन्त्र' का उच्चारण, अर्थ ज्ञान और उसके अनुसार अपने चाल चलन को करे, परन्तु यह जप मन से करना उत्तम है। इस प्रकार प्राणायाम तथा 'ओ३म्' का जप करता हुआ साथ ही भृकुटि या आज्ञा चक्र में ओ३म् को ध्यान से लिखा देखे। महर्षि दयानन्द ने उपासना के लिए एकान्त देश का भी उल्लेख किया है,इसलिए इस सम्बन्ध में भी कुछ लिख देना उचित समझता हूँ।

व्याख्याः शृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

गोमेध याग के बहुत से भिन्न भिन्न प्रकार के पर्यायवाची हैं, देखो, ब्रह्मचारी विद्यालय में गोमेध याग कर रहा है, एक मानो देखोए किसी नदियों के तट पर विद्यमान हो करके एक योगेश्वर जब अपनी इन्द्रियों के ऊपर संयम करता है, और इन्द्रियों के विषयों को साकल्य बना रहा है और साकल्य बना करके अपने में एकोकीकरण कर रहा है, वह मानो देखो, वह भी गोमेध याग कर रहा है।

हमारे यहाँ आयुर्वेद की औषधियों को पान करके ऋषि योगाभ्यास करते रहे हैं और यागी बनते रहे हैं क्योंकि जब तक प्राण का संचार अच्छे विशुद्ध रूप से नही हो पाता तब तक हमारा योगी बनना असम्भव हो जाता है। क्योंकि प्राण विशुद्ध रूपों से गति करना प्राण का अपने में संघर्ष न करना बहुत अनिवार्य है। हमारे आचार्यजन एक संकल्पोमयी प्राणायाम किया करते थे। पुरातन काल में ये प्रायः हम भी कराते रहे हैं। संकल्प से प्राणायाम होते हैं। जैसे हमने संकल्प किया है सूर्य और चन्द्रमा स्वरिञ्जनी होती है। जब संकल्प के द्वारा उनका आदान प्रदान होता है। तो संकल्पोमयी प्राणायाम मानव के बहुत से रूग्णों को और चंचलता को समाप्त कर देता है। मुझे बहुत पुरातन काल की एक वार्त्ता स्मरण है। एक समय मगध राष्ट्र में चले गए थे, बहुत पुरातन काल हुआ। मगध राष्ट्र में एक सरूचिकेत नामक ऋषि थे वह राष्ट्र मे बड़े प्रसिद्ध थे वह भयंकर वनों रहते थे। नद नदियों के तट पर रहते और ब्रह्मचारियों को कुछ शिक्षा भी देते रहते, एक ब्रह्मचारी उनके द्वारा ऐसा आ पंहुचा मनोबल चंचल बन गया, चंचल कैसे बना जिसे उन्माद के रूप में परिणत करते हैं। इसे उन्माद के रूपों में वर्णन करते रहते हैं। सरूची ऋषि ने उस ब्रह्मचारी को अपने आश्रम में आसन दिया। वह उसके ऊपर अन्वेषण कर रहे थे। अन्वेषण क्या था, उनके त्रि जो दोष हैं उन दोषों के ऊपर अन्वेषण और शोधन कर रहे थे समुद्र जल की प्रतिक्रियाओं में जल में उन्हें लाना जल में तपाना और संकल्पोमयी प्राणायाम करने से मस्तिष्क की सूक्ष्मवाहक नाड़ी है। जो अग्नि में किसी कारण किसी आवेश से या किसी के आक्रमण से नाड़ी संकुचित हो जाती है, नाड़ियों में संकुचित पन आ जाता है। वह नाड़ियों का स्पष्टीकरण हो जाता है। स्पष्टीकरण होने से बुद्धि का विकास हो जाता है और बुद्धि का विकास होने से उसका रूग्ण समाप्त हो जाता है।

तुम्हें केवल यह परिचय देने आया हूँ कि यहाँ बहुत सी नाना प्रकार की औषधियां है, जिनको पान करने से मानव महान बन जाता है, पवित्र बन जाता है, सर्पगन्धा औषधि के आसन से यदि योगेश्वर ये चाहता है, कि मैं ध्यानावस्थित हो जाऊं, तो ध्यानावस्थित हो करके, वह परमात्मा से अपना मिलान करने लगता है **हमारे यहाँ ऐसे ऐसे कुशा के आसनों पर विद्यमान हो करके नदियों के तटों पर विद्यमान हो करके**, ऋषियों ने बहुत सा अनुसन्धान प्रभु को निहारते हुए प्रभु से वार्त्ता प्रगट करते रहते थे। हमारे यहाँ नाना रूपों में, कुशा मानी जाती है। कुशा के आसन पर सर्प नही आ पाता, और कोई प्राणी उस अन्नत नही कर पाता तो आसन पवित्र माना गया है। कुशा भी हमारे यहाँ वैदिक साहित्य में बारह प्रकार की होती है। बारह प्रकार की कुशाओं को ले करके यदि उसको जल में तपाया जाता है। तपाने से उनका रस बनाया जाता है रस बना करके उसको जल की कृतिका बना करके जब खरल रह जाता है। उसको मधु वर्णिता में पान करने से वह सर्प जैसे विषैले प्राणियों को विजय करने वाला बन जाता है।